शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

: संपादक : **रामजी माणेकचंद दोशी** वकील

अक्टूबर : १९५८ ☆ वर्ष चौदहवाँ, आसोज वीर नि. सं. २४८४ ☆ अंक : ६

अभिनन्दन

जगत में सर्वश्रेष्ठ, परमहितरूप, परममंगलरूप तथा परमशरणरूप ऐसा सिद्धपद सर्वथा अभिनन्दनीय है; इसलिये उस सिद्धपद को प्राप्त सिद्धभगवन्तों की हृदय में स्थापना करके इस नूतन वर्ष के प्रारम्भ में उनका अभिनन्दन करते हैं।

सिद्धपद की प्राप्ति के उपायभूत ऐसा साधकपद भी परम अभिनन्दनीय है; इसलिये उस सिद्धपद के साधक सर्व संतों का भी परम भक्तिपूर्वक अभिनन्दन करते हैं।

सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र—ऐसे रत्नत्रयस्वरूप जो सिद्धपद का मार्ग है, उस मार्ग का भी परम आदरपूर्वक अभिनन्दन करते हैं और श्री देव-गुरु-शास्त्र के प्रताप से नूतन वर्ष में हमें उस सिद्धपद के मार्ग का लाभ हो—ऐसी मंगल भावना भाते हैं।

वार्षिक मूल्य
तीन रुपया

[१६२]

एक अंक
चार आना

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

हे जीव! तू अपने से आनन्दित हो

हे जीव!

तेरा आनन्द तेरे आत्मस्वरूप में ही है। उस स्वरूप में उतरकर (अन्तर्मुख होकर) जहाँ तूने अपने आनन्द का वेदन किया, वहाँ बाह्य में देह-इन्द्रियादि पदार्थों का कदाचित् घात होता हो, सिंह-सर्प आकर शरीर को फाड़ते या काट खाते हों, तथापि उससे तेरे आनन्द का घात नहीं होता; क्योंकि तेरा आनन्द पर के आश्रित नहीं है। आत्मा ही आनन्दस्वरूप है; इसलिये आत्मा के आश्रित जहाँ आनन्द का वेदन हुआ, वहाँ अन्य कोई तेरे आनन्द का घात करने या रोकने में समर्थ नहीं है।

—और—

आत्मा के आनन्दस्वभाव को भूलकर, उससे विमुख होकर यदि तूने बाह्य में आनन्द माना, तो उस मिथ्या मान्यता से तू अपने आनन्द का घात कर रहा है। तेरे आनन्द का घात होने पर भी बाह्य वस्तुओं का घात न हो, वे अखण्ड रहें, तथापि वे कोई वस्तुएँ तुझे आनन्द देने में समर्थ नहीं हैं; क्योंकि तेरा आनन्द उनमें नहीं है; तेरा आनन्द तुझमें ही है।

—इसलिये—

हे जीव! तू अपने से आनन्दित हो!

[—समयसार गा० ३६६-७१ के प्रवचन से]

आत्मधर्म

सम्पादक : रामजी माणेक चन्द दोशी, वकील

अक्टूबर : १९५८ ☆ वर्ष चौदहवाँ, आसोज वीर नि. सं. २४८४ ☆ अंक : ६

अनेकान्तमूर्ति भगवान आत्मा की

कुछ शक्तियाँ

[३५-३६]

भाव-अभावशक्ति और अभाव-भावशक्ति

[गतांक नं० १६१ से आगे]

''आत्मा में भवति (वर्तती) हुई पर्याय के व्ययरूप भाव-अभावशक्ति है;'' तथा ''न भवति हुई पर्याय के उदयरूप अभाव-भावशक्ति है।'' आत्मा में पहले समय जो पर्याय विद्यमान हो, उसका दूसरे समय अभाव हो जाता है और पहले समय जो पर्याय अविद्यमान हो, उसका दूसरे समय भाव (उत्पाद) होता है; इसप्रकार प्रति समय एक पर्याय का व्यय और दूसरी पर्याय का उत्पाद अनादि-अनन्त होता ही रहता है—ऐसा ही वस्तु का स्वभाव है; किसी अन्य के कारण पर्याय के उत्पाद-व्यय नहीं होते।

''भाव का अभाव'' और ''अभाव का भाव'' इन दोनों का एक ही समय है, भिन्न-भिन्न समय नहीं है। जैसे कि साधक को केवलज्ञान प्रगट हुआ, वहाँ पहले जो साधकदशा थी, उसका अभाव हुआ, वह ''भाव का अभाव'' है, और पहले जो केवलज्ञानदशा नहीं थी, वह प्रगट हुई, उसका नाम ''अभाव का भाव'' है। इसप्रकार भाव-अभावशक्ति और अभाव-भावशक्ति—यह दोनों शक्तियाँ एक ही समय में कार्य कर रही हैं। यदि भाव का अभाव न हो तो केवलज्ञान होने पर भी छद्मस्थ साधकदशा दूर न हो, और अभाव का भाव न हो तो साधकदशा दूर होने पर भी

केवलज्ञान की उत्पत्ति न हो,—अर्थात् कोई पर्याय ही न रहे, और पर्याय के बिना द्रव्य का भी अभाव ही हो। इसलिये इन दोनों शक्तियों से अपना स्वरूप समझना चाहिये।

प्रत्येक आत्मा में प्रति समय इसप्रकार हो ही रहा है, उसकी यह बात है। द्रव्यरूप से आत्मा अखण्ड विद्यमान रहता है और उसकी पर्यायें स्वयमेव बदलती रहती हैं। पहले समय जो पर्याय विद्यमान हो, उसका दूसरे समय अभाव हो जाता है, और पहले समय जो पर्याय न हो, वह दूसरे समय नई उत्पन्न होती है। पहले पर्याय आगे बढ़कर दूसरे समय भी चलती रहे—ऐसा कभी नहीं होता; तथा एक पर्याय दूर होकर दूसरे समय नई पर्याय उत्पन्न न हो—ऐसा भी कभी नहीं होता।

अहो! अभावरूप पर्याय का दूसरे समय भाव हो—ऐसा अपना स्वभाव है, तो फिर सम्यग्दर्शन या केवलज्ञानादि पर्यायें प्रगट करने के लिये बाह्य में देखना कहाँ रहा? बाह्य में देखना तो नहीं रहा किंतु पर्याय की ओर देखना भी नहीं रहा। क्योंकि जिस पर्याय में केवलज्ञान का अभाव है, उस अभाव में से कही केवलज्ञान नहीं होता। पहले समय केवलज्ञान का अभाव है तो दूसरे समय केवलज्ञान का भाव कहाँ से होगा?—द्रव्य में से ही उस अभाव का भाव होगा; अभाव का भाव करने की शक्ति द्रव्य के स्वभाव में है; इसलिये उस स्वभाव की ओर देखने से ही पहले अविद्यमान ऐसी निर्मलपर्याय प्रगट हो जाती है। जो जीव द्रव्यसन्मुख दृष्टि नहीं करता, उसे भी प्रति समय "अभाव का भाव" तो होता ही रहता है, किंतु वह अभाव-भाव उसे विकाररूप ही होता रहता है। साधक को तो स्वभाव के अवलम्बन से, निर्मलरूप से अभाव-भाव होता रहता है; प्रति समय विशेष-विशेष निर्मल पर्याय होती रहती है। सिद्ध भगवान को यद्यपि अब पर्याय की निर्मलता में वृद्धि होना शेष नहीं रहा, तथापि उन्हें भी शुद्ध पर्याय के भाव-अभाव तथा अभाव-भाव होते ही रहते हैं; सिद्ध को एक की एक पर्याय नहीं रहती, किंतु पहले समय की शुद्ध पर्याय का दूसरे समय अभाव (भाव-अभाव) और पहले समय अविद्यमान ऐसी शुद्ध पर्याय का दूसरे समय उत्पाद (अभाव-भाव) इसप्रकार पर्याय में भाव-अभाव तथा अभाव-भाव उन्हें भी होता ही रहता है।

रागादि मलिनता तो आत्मा का स्वभाव नहीं है, इसलिये वह तो आत्मा के साथ नित्य नहीं रहती; किंतु आत्मा के स्वभाव के आश्रय से जो निर्मल पर्याय प्रगट हुई, वह पर्याय भी दूसरे समय नहीं रहती। दूसरे समय उसका अभाव होकर दूसरी नई निर्मल पर्याय प्रगट होती है। इसप्रकार निर्मल पर्याय में भी प्रति समय भिन्न-भिन्न अनुभव है। जो पर्याय उत्पन्न हुई, उसका दूसरे समय

विनाश, और जो पर्याय-अविद्यमान थी, उसका उत्पाद—इसप्रकार पर्याय का परिवर्तन सदा होता ही रहता है। साधक का ज्ञान एक-एक समय की पर्याय को पृथक् करके नहीं पकड़ सकता, किंतु वस्तु स्वभाव ऐसा है—ऐसा उसकी प्रतीति में आ जाता है और उस प्रतीति के बल से उसकी पर्यायों का परिणमन, स्वभाव का अवलम्बन लेकर निर्मल-निर्मलरूप से होता रहता है।

प्रवचनसार गाथा ११३ में कहते हैं कि—''पर्यायें पर्यायभूत स्वव्यतिरेक व्यक्ति के काल में ही सत् होने के कारण उससे अन्य कालों असत् ही है।'' तथा पर्यायों का ''क्रमानुपाती स्वकाल में ही उत्पाद होता है।'' देखो, इसमें बहुत सरस सिद्धान्त है। पर्याय अपने काल के अतिरिक्त अन्य काल में असत् है, इसलिये कोई भी पर्याय अपने समय को छोड़कर पहले या बाद के आगे-पीछे समय में नहीं होती। इसप्रकार प्रत्येक द्रव्य की पर्यायों का क्रमानुपाती स्वकाल में उत्पाद होता है। शरीर हिले-चले-बोले या न हिले-चले-बोले,—उन सबमें परमाणुओं का स्वकाल में उत्पाद है; जीव की उपस्थिति या अनुपस्थिति के कारण उसमें कुछ नहीं होता।

प्रत्येक द्रव्य में, प्रति समय एक पर्याय का व्यय और दूसरी पर्याय की उत्पत्ति होती ही रहती है। जो पर्याय थी, वह गई और नहीं थी, वह हुई—इसमें भाव-अभाव और अभाव-भाव दोनों आ जाते हैं। भाव का अभाव और अभाव का भाव—ऐसे परिणमन की अटूट धारा प्रत्येक वस्तु में चल रही है। जो वस्तु के ऐसे परिणमन को ही नहीं मानते, वे तो गृहीत मिथ्यादृष्टि हैं, उन्हें तो मिथ्यात्व के अभावरूप और सम्यक्त्व के भावरूप परिणमन नहीं होता। द्रव्य-गुण तो त्रिकाल भावरूप रहते हैं और पर्याय तो एकसमय के ही भावरूप है, दूसरे समय उसका अभाव होकर दूसरा नया भाव प्रगट होता है। वहाँ त्रिकाली भाव के आश्रय से साधक की पर्याय में निर्मलता का भाव बढ़ता जाता है और मलिनता का अभाव होता जाता है। ऐसे परिणमन के बिना अज्ञानदशा दूर होकर साधकदशा अथवा साधकदशा दूर होकर सिद्धदशा नहीं हो सकती।

यहाँ जितनी शक्तियों का वर्णन करते हैं, वे सर्व शक्तियाँ प्रत्येक आत्मा में विद्यमान हैं; अनंत शक्तियों का धारक एक आत्मा है; जहाँ एक शक्ति है, वहीं दूसरी अनंत शक्तियाँ एक साथ विद्यमान हैं; इसलिये यदि एक शक्ति के द्वारा आत्मस्वभाव को जाने तो अनंत शक्तिवान चैतन्यमूर्ति आत्मा प्रतीति में आ जाता है।

प्रश्नः—ऐसा सूक्ष्म समझकर क्या करना है? अंत में तो क्रोधादि कम करने का ही तात्पर्य है न? भले ही नासमझ गड़रिये जैसा हो, तथापि इसे समझे बिना भी क्रोधादि कम करे तो धर्म हो जायेगा?

उत्तर:—अरे भाई! सांसारिक कार्यों में तो तू बुद्धि-रुचि लगाता है और यहाँ गड़रिये का दृष्टान्त देकर तुझे बिना समझे धर्म करना है;—यह तो तेरी धर्म की अरुचि ही है। आत्मा का स्वभाव समझे बिना बड़े बैरिस्टर को या गड़िरिये को—किसी को धर्म नहीं हो सकता; उसी प्रकार क्रोधादि भी सचमुच दूर नहीं होते। क्रोध क्या? क्रोध करनेवाला और उसे कम करनेवाला कौन? तथा उसका क्रोध रहित स्वभाव कैसा है? वह सब जाने बिना किसके लक्ष से क्रोधादि का त्याग करेगा? जिस प्रकार प्रकाश के भाव बिना अंधकार का अभाव नहीं होता; प्रकाश हो, तभी अंधकार दूर होता है; उसी प्रकार क्रोधरहित ऐसे चिदानन्दस्वभाव की ओर का भाव प्रगट हुए बिना क्रोध का अभाव नहीं होता। ज्ञानी तो चैतन्यस्वभाव में एकता करके क्रोधादि का अभाव कर डालते हैं। ऐसे चैतन्यस्वभाव के लक्ष बिना अज्ञानी, क्रोध टालना चाहे तो क्रोध दूर नहीं होता। भले ही वह कषाय की मंदता करे, तथापि उसको अनंतानुबन्धी कषाय तो विद्यमान ही है।

जैसे—दो व्यक्ति हैं; एक रत्नों का पारखी है, वह तो हाथ में चिन्तामणि रत्न रखकर जिसका चिंतवन करे, उसे प्राप्त करता है; और दूसरा गड़रिये जैसा है; वह रत्न को पहिचाने बिना हाथ में सफेद पत्थर, लेकर चिंतवन करता है; किंतु इसप्रकार चिंतवन करने से कहीं चिंतित वस्तु की प्राप्ति नहीं होती, क्योंकि उसने पत्थर को पकड़ रखा है। उसी प्रकार धर्मी तो अपनी दृष्टि में चैतन्य चिन्तामणि अनंत शक्ति सम्पन्न भगवान आत्मा को लेकर उसका चिंतवन करता है, और उसके चिंतन से वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्राप्त करता है तथा कषायों का अभाव करता है। किंतु अज्ञानी, अनंत शक्ति सम्पन्न चैतन्य-चिन्तामणि को पहिचाने बिना राग-द्वेष, पुण्य-पापादि कषायों को पकड़कर उनके चिंतन से—"यह करते-करते हमें सम्यग्दर्शन हो, सम्यग्ज्ञान हो सम्यग्चारित्र हो,"—ऐसी इच्छा करता है; किंतु इसप्रकार कहीं सम्यग्दर्शनादि नहीं हो सकते। इसप्रकार अपने शुद्ध स्वभाव को समझकर उसे पकड़े बिना (अर्थात् उसी का अवलम्बन किये बिना) सम्यग्दर्शनादि धर्म नहीं होते और कषायें दूर नहीं होती।

❖ आत्मा में शरीरादि जड़ का तो त्रिकाल अभाव है।

❖ रागादि विकार का भी त्रिकाली स्वभाव का अभाव है।

❖ स्वभाव में से प्रगट हुई एक समय की निर्मल पर्याय का भी दूसरे समय अभाव हो जाता है और दूसरी पर्याय प्रगट होती है।

❖ शुद्ध द्रव्यस्वभाव त्रिकाल ज्यों का त्यों एकरूप बना रहता है और वही अवलम्बनभूत है।

साधक पर्याय हो या सिद्धपर्याय हो,—सर्व पर्यायों के समय शुद्ध द्रव्यस्वभाव तो सदैव एकरूप वर्तता है; किंतु पर्याय में साधकपने के समय सिद्धपना नहीं होता। साधक पर्याय का अभाव हो, तब सिद्धपर्याय का भाव होता है। एक के अभाव बिना दूसरी का भाव करना चाहे, अथवा एक के भाव बिना दूसरी का अभाव करना चाहे तो ऐसा नहीं हो सकता। मिथ्यात्व के अभाव बिना सम्यक्त्व का भाव अथवा सम्यक्त्व के भाव बिना मिथ्यात्व का अभाव नहीं हो सकता; इसलिये पहले समय वर्तती हुई पर्याय का दूसरे समय अभाव होनेरूप भाव-अभावशक्ति, तथा पहले समय न वर्तती हुई पर्याय का दूसरे समय उत्पाद होनेरूप अभाव-भावशक्ति—ऐसी दोनों शक्तियाँ ज्ञानस्वरूप आत्मा में विद्यमान हैं।—ऐसे शक्तिवान आत्मा को पहिचानने से भगवान आत्मा का शुद्धरूप अनुभव होता है, अर्थात् सम्यग्श्रद्धा-ज्ञान में अनंत शक्तिवान भगवान आत्मा प्रसिद्ध होता है, यही धर्म है और यही मोक्ष का उपाय है।

ऐसे अपने आत्मा को श्रद्धा-ज्ञान में लिये बिना देह की क्रिया को या मंदराग को चारित्र मान ले, तथा वह करते-करते सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होगा—ऐसा मान ले, वह तो कैसी मूढ़ता है! उसमें तो चारित्र की तथा सम्यग्दर्शनादि की विराधना है। सम्यग्दर्शन तथा सम्यक्चारित्र क्या वस्तु है—उनकी महिमा की उसे गंध भी नहीं है।

सिद्धपर्याय वर्तमान अभावरूप होने पर भी उसका भाव होने की शक्ति द्रव्यस्वभाव में विद्यमान है; उसका विश्वास करने से सिद्धपर्याय प्रगट हो जाती है। अभाव पर्याय का भाव करने की शक्ति चैतन्य में है; सिद्ध पद का अभाव है, उसका भाव चैतन्यस्वभाव के आश्रय से होता है, उसके लिये किसी पर के आश्रय की आवश्यकता नहीं है। मेरी वर्तमान पर्याय में केवलज्ञान का अभाव होने पर भी, उसका सदैव अभाव ही रहे, ऐसा नहीं है; उसका भाव करने की शक्ति मेरे आत्मा में विद्यमान है;—इसप्रकार साधक को स्वशक्ति का विश्वास है, इसलिये उसे स्वशक्ति की सन्मुखता से अल्पकाल में केवलज्ञान का भाव प्रगट हो जाता है।

वर्तमान में जिस पर्याय का अभाव है, वह भविष्य में प्रगट होकर भावरूप होती है।—कहाँ से प्रगट होती है?—तो कहते हैं कि—अपने स्वभाव में से। यह स्वभाव कैसा है?—तो कहते हैं कि—शुद्ध अनंत शक्ति सम्पन्न है; उस स्वभाव में विकार नहीं है; इसलिये विकार प्रगट होने की

बात न लेकर निर्मल पर्याय प्रगट होने की बात ही लेना चाहिये। इस समय आत्मा में सिद्धपर्याय का अभाव है, इसलिये वह कभी प्रगट ही नहीं होगी—ऐसा नहीं है; क्योंकि आत्मा की अभाव-भावशक्ति ऐसी है कि भविष्य की जिस निर्मल पर्याय का इस समय अभाव है, वह बाद में भावरूप होती है।—ऐसी निज शुद्धशक्ति की प्रतीति होने से साधक को ऐसा सन्देह नहीं होता कि भविष्य में मेरे स्वभाव से अशुद्धता प्रगट होगी;—किंतु उसे तो स्वभाव के विश्वासपूर्वक निःशंकता है कि—मेरे स्वभाव में से शुद्धपर्याय का ही प्रवाह सादि-अनंत काल तक प्रवाहित रहता है; भविष्य में मेरे आत्मा में से विकार का "भाव" नहीं होगा; उसका तो "अभाव" होगा और केवलज्ञान तथा सिद्धपद का भाव होगा।

हे जीव! तेरी पर्याय में हित का अभाव है और तुझे हित प्रगट करना है तो वह हित कहाँ ढूँढ़ना? पर में या विकार में ऐसी शक्ति नहीं है कि तुझे हित दे। अपने स्वभाव में ही हित ढूँढ़; उसी में ऐसी शक्ति है कि हितरूप दशा अपने में से प्रगट करे।

अपने शुद्धस्वभाव को प्रतीति में लेकर उसके अवलम्बन से पहले समय में विद्यमान ऐसी निर्मल-निर्मल पर्यायों को प्रगट करके धर्मी जीव उनका कर्ता होता है, किंतु विकार का कर्ता नहीं होता; उसका तो अभाव करता जाता है; तथा शरीरादि जड़ का तो आत्मा में अभाव ही है; इसलिये उसका भी कर्ता नहीं होता।

आत्मा में जड़ का त्रिकाल अभाव है; वह कभी आत्मा में भावरूप नहीं होता; शुद्धस्वभाव में विकार का अभाव है; इसलिये उस शुद्धस्वभाव की दृष्टि में धर्मी को विकारी भाव, भावरूप होकर प्रगट नहीं होते, उसे तो "अभाव" रूप से ऐसी निर्मल पर्यायें ही "भाव" रूप होकर प्रगट होती है। ऐसा "अभाव-भावशक्ति का" सम्यक् परिणमन है। ऐसा सम्यक् परिणमन किसे होता है?—कि जिसकी दृष्टि शुद्ध द्रव्य पर है, उसी को शुद्ध परिणमन होता है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की जो निर्मल पर्याय पहले समय अभावरूप थी और दूसरे समय वह पर्याय प्रगट होकर भावरूप हुई;—तो उस "भाव" रूप कौन परिणमित हुआ है?

- ❖ शरीरादि का आत्मा में अभाव है,
- ❖ पहले समय के विकार का दूसरे समय में अभाव है;
- ❖ पहले समय की निर्मल पर्याय का भी दूसरे समय में अभाव है;

—वे तीनों अभावरूप हैं; उनमें से कोई दूसरे समय भावरूप नहीं होते; तो फिर दूसरे समय

का शुद्धभाव कहाँ से आया ?—तो कहते हैं कि शुद्धद्रव्य में ही वैसे भावरूप होने की शक्ति है; इसलिये वह स्वयं ही दूसरे समय में वैसे भावरूप हुआ है।—इसप्रकार शुद्धद्रव्य को लक्ष में लेकर जो उसके सन्मुख परिणमन करे, उसी ने अभाव-भाव शक्तिवाले आत्मा को जाना और माना है। वर्तमान पर्याय में ऐसी शक्ति नहीं है कि वह दूसरी शक्ति को प्रगट करे, इसलिये पर्यायदृष्टि द्वारा ''अभाव-भाव'' शक्तिवाले आत्मा की प्रतीति नहीं हो सकती। शुद्धद्रव्य पर जिसकी दृष्टि नहीं है, उसे आत्मा की शक्तियों का निर्मल परिणमन नहीं होता।

वर्तमान में जो निर्मल पर्यायें अभावरूप हैं, उनके प्रगट होने की शक्ति मेरे आत्मा में है; इसलिये अपने आत्मा की शक्ति के सन्मुख होकर ''अभाव का भाव'' करूँ;—ऐसा न मानकर अज्ञानी मानता है कि—पर में से अपनी निर्मल पर्याय प्रगट करूँ; तो उसे निज शक्ति की प्रतीति नहीं है। धर्मात्मा को निज शक्ति की प्रतीति है, वे पर में से अपनी पर्याय का प्रगट होना नहीं मानते, इसलिये अपनी निर्मल पर्याय प्रगट करने के लिये वे पर की ओर या विकार की ओर नहीं देखते, पर्यायबुद्धि नहीं करते, किंतु शुद्ध द्रव्योन्मुख होकर उसमें से निर्मल पर्याय प्रगट करते हैं। जहाँ निर्मल पर्याय की शक्ति भरी होगी, वहाँ से प्रगट होगी या बाह्य में से आयेगी ?—जहाँ शुद्ध ज्ञान-आनन्द की शक्ति विद्यमान है, उस ओर उन्मुख होने पर उसी में से ज्ञान-आनन्द की शुद्ध पर्याय प्रगट होती है। स्वशक्ति की ओर उन्मुख हुए बिना बाह्य से प्रगट करना चाहे तो अनंत काल में भी प्रगट नहीं हो सकता।

अज्ञानी तो पर का अपने में ''अभाव'' है, उसे ''भाव'' रूप करना चाहता है; आत्मा की अभाव-भावशक्ति की उसे खबर नहीं है।

ज्ञानी तो ''अभावरूप'' ऐसी निर्मल पर्याय को अपनी स्वशक्ति में अंतर्मुख होकर ''भाव'' रूप करता है, इसलिये शुद्धता में से शुद्धता को ही प्रगट करता जाता है। जिसकी दृष्टि शुद्धस्वभाव पर नहीं है, वह विकार को बढ़ाना चाहता है। जो शुभाशुभपरिणाम है, उन्हें दूसरे ही क्षण प्रगट करूँ—इसप्रकार उसे आस्रव की ही भावना है; आत्मा की शुद्ध शक्ति की भावना उसे नहीं है।

आत्मा, जड़ की क्रिया करता है, अथवा जड़ की क्रिया से आत्मा को लाभ होता है—ऐसा माननेवाला अपने में जड़ का ''भाव'' करना चाहता है, वह मिथ्यादृष्टि है।

उसी प्रकार विकार से लाभ माननेवाला विकार को अपने में भावरूप रखना चाहता है, वह भी मिथ्यादृष्टि है, उसे प्रतिक्षण विकार का ही भाव होता है, किंतु निर्मलता का भाव नहीं होता।

दयादि के शुभपरिणामों को मैं भविष्य में टिका रखूँगा—ऐसी जिसकी भावना है, उसे आश्रव की भावना है, इसलिये संसार की भावना है। सम्यग्दृष्टि की भावना स्वभाव पर है; वह तो शुद्ध स्वभाव की भावना से शुद्धता का ही भाव करता जाता है। मैं अनंत शक्ति का पिण्ड शुद्ध चैतन्यस्वभाव हूँ; मेरे स्वभाव में समस्त राग का अभाव है; मेरे स्वभाव में ऐसी शक्ति है कि जो निर्मल पर्याय पहले अभावरूप हो, उसे प्रगट करूँ—इसप्रकार अपने स्वभाव को जानकर उसी की भावना से धर्मी जीव निर्मल पर्यायरूप परिणमित होता जाता है।

अनादि काल के अज्ञानी जीव ने सत्समागम से बहुमानपूर्वक स्वभाव का श्रवण करके, फिर अन्तरोन्मुख होकर उस स्वभाव की प्रतीति की, वहाँ अनादिकालीन मिथ्यात्व का अभाव हुआ (वह भाव-अभाव है), और अपूर्व सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ (वह अभाव-भाव है,)—ऐसा सम्यग्दर्शन हुआ, उसी समय सिद्धदशा वर्तमान नहीं है, तथापि भविष्य की सिद्धपर्याय प्रगट होने की शक्ति मेरे द्रव्य में है—इसप्रकार सम्यक्त्वी को द्रव्यदृष्टि के बल से सिद्धदशा की निःशंकता हो गई है। सिद्धदशा करूँ या सम्यग्दर्शनादि करूँ—ऐसे विकल्प से कहीं सिद्धदशा या सम्यग्दर्शनादि नहीं होते; किंतु निर्विकल्प द्रव्यस्वभाव में एकाग्र होने पर सम्यग्दर्शनादि निर्मल पर्याय प्रगट हो जाती है; इसलिये धर्मी की दृष्टि में ऐसे शुद्ध द्रव्यस्वभाव की ही मुख्यता है। ''मोक्ष करूँ''—ऐसा विकल्प आये, किंतु उस विकल्प की मुख्यता नहीं है, विकल्प की शरण नहीं है, शुद्ध स्वभाव की ही शरण है। उसी की शरण से मिथ्यात्व दूर होकर सम्यक्त्व होता है, उसी की शरण में अस्थिरता दूर होकर स्थिरता होती है; उसी की शरण से अल्पज्ञता दूर होकर सर्वज्ञता होती है। इसप्रकार शुद्ध द्रव्यस्वभाव के आश्रय से शुद्ध परिणमन होता है;—उसमें पुरुषार्थ भी साथ ही है; और वही सम्यक् पुरुषार्थ है। इसके अतिरिक्त एक पुरुषार्थ गुण को पृथक् करके पुरुषार्थ करने जाये तो उसे भेद के आश्रय से राग ही होता है, किंतु शुद्धता नहीं होती। ''मैं पुरुषार्थ करूँ''—ऐसे विकल्प से सच्चा पुरुषार्थ नहीं होता। पुरुष अर्थात् शुद्ध आत्मा; उसके साथ परिणति एकाकार होकर शुद्धतारूप परिणमित हुई, वही सच्चा पुरुषार्थ है; उसमें एकसाथ अनंत गुणों का निर्मल परिणमन उछलता है। शुद्ध चैतन्यतत्व के सम्मुख होकर उसमें सावधानी की, वहाँ अब विषयकषायरूपी चोर नहीं आ सकते।

इस चैतन्यस्वरूप आत्मा के परिणमन में ऐसा भाव-अभावपना है कि पहले समय की अवस्था दूसरे समय अभावरूप हो जाती है। इसलिये प्रति समय उसकी अवस्था बदल जाती है।

यदि एक ही अवस्था चलती रहे और भाव का अभाव न हो तो अज्ञानी का अज्ञान कभी दूर हो ही नहीं सकता; साधक की साधकता कभी दूर हो ही नहीं सकती; उसी प्रकार नवीन पर्याय प्रगट होने रूप ''अभाव-भाव'' यदि न हो तो अनादि से अभावरूप ऐसा सम्यग्ज्ञान कभी प्रगट हो ही नहीं सकता, केवलज्ञान प्रगट हो ही नहीं सकता; किन्तु ऐसा नहीं है।

आचार्य भगवान कहते हैं कि अरे जीव! तू आकुलित न हो... अरे रे! चिरकाल से जिस अज्ञान का सेवन किया है, वह कैसे दूर होगा? और मुझे सम्यग्ज्ञान कैसे होगा?—इसप्रकार तू अकुलाना मत। अनादिकाल से अज्ञान का सेवन किया, इसलिये वह अज्ञान सदैव बना ही रहता है-ऐसा नहीं है; और अनादिकाल से ज्ञान नहीं किया, इसलिये अब वह ज्ञान नहीं हो सकता—ऐसा भी नहीं है। अनादि से प्रतिसमय विद्यमान ऐसे अज्ञान का अभाव करके अपूर्व सम्यग्ज्ञान का भाव होता है—ऐसी शक्तियाँ तेरे आत्मा में विद्यमान हैं; उसका एक बार विश्वास कर तो तेरी आकुलता दूर हो जाये। जो-जो पर्याय आती है, वह ''अभाव'' को साथ लाती है, इसलिये दूसरे समय अवश्य ही उसका अभाव हो जायेगा। जिस प्रकार जो जन्मता है, वह मरण को साथ ही लाता है; उसी प्रकार जो पर्याय जन्मती है, वह दूसरे समय अवश्य ही नाश को प्राप्त होती है, और दूसरे समय नई पर्याय उत्पन्न होती है। शुद्धद्रव्य का आश्रय करनेवाले को वह पर्याय शुद्ध होती है; इसलिये हे भाई! तू अकुलाना नहीं; इस अपूर्ण पर्याय के समय ही उसके पीछे (अंतरस्वभाव में) पूर्ण शुद्धपर्याय प्रगट होने की शक्ति तेरे आत्मा में भरी है, इसलिये उसके सन्मुख हो।

वर्तमान में आत्मा को संसार पर्याय का सद्भाव है, किंतु उस ''भाव का अभाव'' कर दे—ऐसी शक्ति भी साथ ही विद्यमान है। यदि उसे प्रतीति में ले तो संसार का अभाव हुए बिना न रहे।

और वर्तमान में इस आत्मा को सिद्धपर्याय का अभाव है, किंतु उस ''अभाव का भाव'' करने की शक्ति भी साथ ही विद्यमान है। यदि आत्मा के ऐसे स्वभाव को प्रतीति में ले तो सिद्धदशा प्रगट हुए बिना न रहे।

—इसप्रकार ''भाव-अभाव'' और ''अभाव-भाव'' शक्तिवाले आत्मस्वभाव को पहिचानने से संसार दूर होकर सिद्धदशा होती है। वह सिद्धदशा होने के बाद भी भाव-अभाव और अभाव-भाव तो होता ही रहता है अर्थात् एक के बाद एक पर्याय बदलती ही रहती है; किंतु वे समस्त पर्यायें एक समान शुद्ध ही होती हैं, प्रतिक्षण नई-नई पर्याय का अनुभव होता रहता है।

भाव का अभाव और अभाव का भाव—ऐसे अखण्ड प्रवाह की धारा में साधक-धर्मी को शुद्धता की वृद्धि होती जाती है।

जगत के चेतन या अचेतन समस्त पदार्थों में भी भाव का अभाव और अभाव का भाव—ऐसा पर्याय का रूपान्तर अपने-अपने स्वभाव से हो ही रहा है। जो जीव ऐसे वस्तुस्वभाव को जाने, उसे जगत के किसी पदार्थ में ''वर्तमान चालू पर्याय का मैं अभाव करूँ, अथवा न हो उसे उत्पन्न करूँ''—ऐसी भ्रमबुद्धि नहीं रहती; किंतु मोहरहित ज्ञातापना ही रहता है।

चैतन्यस्वभाव की अतिशय विराधना करनेवाला जीव निगोददशा को (—आत्मा की नीच से नीचदशा को) प्राप्त होता है; जीव के स्वभाव को भूलकर देह की अत्यन्त मूर्च्छा से वह निगोद का जीव एक अंतर्मुहूर्त में उत्कृष्टरूप से ६६,३३६ शरीर बदल लेता है; एक शरीर छोड़कर दूसरा और दूसरा छोड़कर तीसरा—इसप्रकार ६६,३३६ भव ४८ मिनट में धारण करता है।—देखो, उसकी ममता का फल!! और प्रतिक्षण वह अनंतानंत दुःख की वेदना भोग रहा है—ऐसा अपार दुःख कि जिसे केवली भगवान ही जानें और वह निगोद का जीव ही भोगे! और सिद्ध भगवन्त शरीररहितरूप से प्रतिसमय चैतन्य की पर्याय बदलकर परिपूर्ण आनन्द का ही अनुभव कर रहे हैं। देह की ममता तोड़कर देह से भिन्न आनन्दस्वरूप आत्मा की आराधना की, उसके फल में सिद्धदशा प्रगट हुई; वहाँ प्रतिक्षण देहातीत अतीन्द्रिय आनन्द का ही वेदन है; एक आनन्दपर्याय बदलकर दूसरी और दूसरी बदलकर तीसरी—इसप्रकार सादि-अनंत काल तक आनन्द की ही धारा चलती रहती है। अहो! वह आनन्द जगत के जीवों को इन्द्रियों द्वारा गम्य नहीं है।

वर्तमान साधकदशा में सिद्धदशा का अभाव होने पर भी, उस अभाव का भाव होने की शक्ति आत्मा में है। संसारपर्याय के समय सिद्धपर्याय प्रगट नहीं होती, किंतु वह प्रगट होने की शक्ति तो आत्मा में विद्यमान ही है। अंतर में शक्ति भरी है, उसी में से वह पर्याय चली आती है। जिस प्रकार पानी का विशाल सरोवर भरा हो, उसमें से धारा प्रवाहित होती रहती है; उसी प्रकार चैतन्य सरोवर-आनन्द सरोवर ऐसे आत्मा के स्वभाव में निर्मल पर्यायें प्रगट होने की शक्ति भरी हैं, उसी में से निर्मलपर्यायों का प्रवाह चला आता है;—लेकिन किसे? कि जो अपने स्वभाव की ओर देखे उसे।

अहा! अपने आनन्द के लिये मुझे कहीं पर की ओर देखना ही नहीं है.... मेरा आत्मा ही आनन्दस्वभाव से परिपूर्ण भरा हुआ है; संतों ने उसी के अपार गीत गाये हैं।—इसप्रकार स्वसन्मुख

होकर अपने स्वभाव की प्रतीति करना ही इन शक्तियों के वर्णन का तात्पर्य है।

हे जीव! सिद्धदशा आदि निर्मलपर्यायों का इस समय तुझमें अभाव है और उनका भाव करना है; तो वह अभाव का भाव किसके आधार से होगा? निमित्त के, विकार के या वर्तमान पर्याय के आधार से वह भाव नहीं होगा; एक पर्याय में दूसरी पर्याय को प्रगट करने का सामर्थ्य नहीं है; किंतु वस्तु के स्वभाव में त्रिकाल शक्ति विद्यमान है, उसमें से प्रतिसमय अविद्यमान पर्यायों का उत्पाद होता रहता है; इसलिये अभावरूप ऐसी निर्मल पर्यायों का भाव, द्रव्यस्वभाव की सन्मुखता से होता है। अभाव-भावशक्ति की प्रतीति करनेवाला द्रव्यस्वभाव-सन्मुख होता है और द्रव्य के आश्रय से उसे प्रतिक्षण विशेष-विशेष निर्मल पर्यायें प्रगट होती जाती है। अल्पज्ञता के समय सर्वज्ञता का अभाव है; किंतु वस्तु में सर्वज्ञता की शक्ति त्रिकाल भरी है—उसकी धर्मी को प्रतीति है; और उस शक्ति के आधार से ही सर्वज्ञता का विकास हो जायेगा (—अभाव का भाव हो जायेगा)—ऐसी धर्मी को नि:शंकता है। चौथे गुणस्थान में पर्याय में केवलज्ञान का अभाव होने पर भी, सम्यक्त्वी को सर्वज्ञशक्तिवाला आत्मस्वभाव प्रतीति में आ गया है। इसलिये श्रद्धा अपेक्षा से केवलज्ञान हो गया है। यदि सर्वज्ञशक्ति का नि:शंक निर्णय न हो तो उस जीव ने आत्मा को जाना ही नहीं। पूर्णता प्रगट होने से पूर्व, जिसमें से पूर्णता प्रगट होना है—ऐसे स्वभाव की प्रतीति हो जाती है, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। यदि आत्मा के स्वभाव को प्रतीति में ले तो, "अरे रे! अनादि का अल्पज्ञपना है, वह कैसे दूर होगा?"—ऐसी शंका या आकुलता न रहे। विद्यमान ऐसी अल्पज्ञता का अभाव कर डाले और अप्रगट ऐसी सर्वज्ञता प्रगट करे—ऐसी शक्ति आत्मा में विद्यमान है—ऐसा साधक को आत्मविश्वास जागृत हो गया है, इसलिये अब उस शक्ति के अवलम्बन से अल्पकाल में अल्पज्ञता दूर हो जायेगी और सर्वज्ञता प्रगट हो जायेगी;—उसमें साधक को सन्देह नहीं रहता। अहो! अनंत शक्तिसम्पन्न चैतन्य भगवान प्रतिसमय विराजमान हैं, उसके सन्मुख होकर सेवन करते-करते साधक को अविद्यमान ऐसे केवलज्ञानादि भाव प्रगट हो जाते हैं। पर्याय के आधार से पर्याय नहीं है; इसलिये धर्मी की दृष्टि में पर्याय का अवलम्बन नहीं है किंतु अखण्ड आत्मस्वभाव का ही अवलम्बन है। जहाँ अखण्ड आत्मा का अवलम्बन लिया, वहाँ मिथ्यात्व का अभाव होकर सम्यग्दर्शन हुआ है और उसके बाद भी उसी के अवलम्बन से साधक को निर्मल-निर्मल पर्यायों के ही भाव-अभाव और अभाव-भाव होते रहते हैं। यह समझने जैसी बात है कि स्वभावदृष्टि में साधक को विकार का भाव-अभाव या अभाव-भाव है; एक निर्मल पर्याय हुई

उसका दूसरे समय अभाव और दूसरी निर्मल पर्याय का भाव; पुनश्च दूसरे समय उस निर्मल पर्याय का अभाव और तीसरी निर्मल पर्याय का भाव;—इसप्रकार स्वभाव के आश्रय से निर्मलता का ही भाव-अभाव और अभाव-भाव होता है। स्वभाव की दृष्टि में विकार का तो अभाव ही है, उस दृष्टि में विकार का परिणमन ही नहीं है, इसलिये विकार के भाव-अभाव की अथवा अभाव-भाव की इसमें मुख्यता नहीं है। यहाँ तो स्वभावोन्मुख होकर स्वभाव के अवलम्बन से निर्मल-निर्मल क्रमबद्धपर्यायों के भाव-अभावरूप से तथा अभाव-भावरूप से परिणमित साधक आत्मा की बात है; निर्मल पर्याय सहित आत्मा की बात है। मात्र विकाररूप परिणमित हो, उसे वास्तव में आत्मा का परिणमन नहीं कहते। शुद्धस्वभाव के आश्रय से आत्मा निर्मल पर्यायरूप परिणमित हो ही रहा है, वहाँ ''इस पर्याय को इधर पलट दूँ''—ऐसी पर्यायबुद्धि ज्ञानी को नहीं है, वह तो स्वभाव के साथ एकता करके निर्मलरूप परिणमित होता जाता है।

भाव का अभाव और अभाव का भाव—इसरूप प्रतिसमय परिणमित होता रहे—ऐसा आत्मा का स्वभाव है, इसलिये आत्मा के सर्व गुण भी इसीप्रकार परिणमित हो रहे हैं। जहाँ अनंत गुणों के पिंडरूप आत्मस्वभाव के लक्ष से परिणमन हुआ, वहाँ समस्त गुणों में निर्मल परिणमन का प्रारम्भ हो जाता है। द्रव्य के अनंत गुणों में ऐसी शक्ति (अभाव-भाव शक्ति) है कि वर्तमान में जिस निर्मल पर्याय का अभाव है, उसका दूसरे समय भाव होगा; और इसप्रकार अनंतानंत काल तक नई-नई निर्मल पर्यायों का भाव आता ही रहेगा—ऐसी आत्मा में शक्ति है। वह भाव कहाँ से आयेगा?—तो कहते हैं, द्रव्य के स्वभाव में से; इसप्रकार द्रव्यस्वभावोन्मुख होकर उसकी प्रतीति करना है।—इसप्रकार अनेकान्तमूर्ति आत्मा को प्रतीति करे, तभी उसकी शक्तियों की प्रतीति होती है, और उसी को स्वभावोन्मुखता से निर्मल-निर्मल पर्यायें होती है।—ऐसा अनेकान्त का फल है। जो जीव स्वभावोन्मुख नहीं होता, उसे अनेकान्तमूर्ति आत्मा की प्रतीति नहीं होती, तथा अनेकान्त के फलरूप निर्मल पर्याय भी उसे नहीं होती।

''अनेकान्त भी सम्यक्एकान्त ऐसे निजपद की प्राप्ति के अतिरिक्त अन्य हेतु से उपकारी नहीं है।''—ऐसा श्रीमद् राजचन्द्रजी ने कहा है, उसमें भी दोनों पक्ष जानकर शुद्ध आत्मस्वभावोन्मुख होने का ही रहस्य बतलाया है। जो जीव शुद्ध आत्मस्वभाव की ओर नहीं ढलता, उसे अनेकान्त नहीं होता, वह मिथ्यादृष्टि ही रहता है।

जिसमें निर्मल पर्यायों की शक्ति विद्यमान है, उसी के लक्ष और आलम्बन से निर्मल पर्यायों

का विकास होता है। भविष्य की जो निर्मल पर्याय प्रगट करना चाहता है, वह कहाँ से आयेगी ?—पर के या विकार के आश्रय से निर्मल पर्याय नहीं होगी, किंतु अपने शुद्धस्वभाव का आश्रय करने से आत्मा स्वयं निर्मलपर्यायरूप परिणमित हो जायेगा। पर्याय में जो कमी है, उसे पूरी करना है (अर्थात् केवलज्ञान का अभाव है, उसका भाव करना है) तो वह कहाँ से आयेगी ?—द्रव्य की शक्ति में पूर्णता भरी है, उसके अवलम्बन से पर्याय में भी पूर्णता प्रगट हो जायेगी। इसप्रकार द्रव्य की शक्ति ही पर्याय की कमी को दूर करनेवाली है—अन्य कोई नहीं; इसलिये साधक की दृष्टि में निज सामान्य द्रव्य का ही अवलम्बन है। ज्ञानशक्ति में केवलज्ञान प्रदान करने की शक्ति है; श्रद्धाशक्ति में क्षायिक सम्यक्त्व देने की शक्ति है; आनन्दशक्ति में पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द देने की शक्ति है।—इसके अतिरिक्त किन्हीं संयोगों में या विकार में ऐसी शक्ति नहीं है कि श्रद्धा-ज्ञान-आनन्द प्रदान करे। स्वभाव में ही ऐसी शक्ति है, इसलिये अपना चैतन्य द्रव्य ही श्रद्धा-ज्ञान-आनन्द देनेवाला है। ऐसे द्रव्य की ओर उन्मुख होकर उसका सेवन करने से वह श्रद्धा-ज्ञान और आनन्द की पूर्णता प्रदान करता है।

जय हो ऐसे दिव्यदान दातार की !

—यहाँ ३५वीं भाव-अभावशक्ति का तथा ३६ वीं अभाव-भावशक्ति का वर्णन पूरा हुआ।

मोक्ष के साधन सम्बन्धी प्रश्नोत्तर

[मोक्ष अधिकार के प्रवचनों से। श्रावण शुक्ला ११ वीर सं० २४८३]

जिज्ञासुओं को समझने में सरलता हो, इसलिये यह विषय प्रश्नोत्तररूप में उपस्थित किया है।

नोट—इस लेख के प्रश्नोत्तर नं० ६४ से १०० तक भूल से गतांक नं १६१ में दिये जा चुके हैं; अतः पाठकगण क्रमवार देखकर पढ़ें।

१-प्रश्नः—मोक्ष अधिकार के प्रारम्भ में किसे नमस्कार किया है ?

उत्तरः—समस्त कर्मबन्ध को काटकर जिन्होंने मोक्ष प्राप्त किया, ऐसे सिद्ध परमात्मा को इस मोक्ष अधिकार के प्रारम्भ में नमस्कार किया गया है।

२-प्रश्नः—आचार्यदेव ने किस प्रकार मांगलिक किया है ?

उत्तरः—'पूर्णज्ञान जयवंत वर्तता है'—ऐसा कहकर सम्यग्ज्ञान की महिमारूप मांगलिक किया है।

३-प्रश्नः—मोक्ष क्या है ?

उत्तरः—मोक्ष अर्थात् आत्मा की पूर्ण शुद्ध पर्याय; वह भी आत्मा का एक स्वांग है। अथवा आत्मा और बंध को सर्वथा भिन्न करना, सो मोक्ष है।

४-प्रश्नः—आत्मा और बंध को किस प्रकार भिन्न किया जा सकता है ?

उत्तरः—प्रज्ञारूपी छैनी द्वारा और बंध को पृथक् किया जाता है।

५-प्रश्नः—प्रज्ञारूपी छैनी अर्थात् क्या ?

उत्तरः—प्रज्ञा अर्थात् आत्मा और बंध का भेदज्ञान; उस भेदज्ञान का बारम्बार अभ्यास करने से आत्मा और बंध पृथक् हो जाते हैं। भेदज्ञान के अतिरिक्त अन्य किन्हीं (रागादि) के द्वारा कभी मोक्ष नहीं होत।

६-प्रश्नः—यह आत्मा किस प्रकार निश्चित होता है ?

उत्तरः—स्वसंवेदनरूप अनुभूति द्वारा ही आत्मा निश्चित होता है; इसके सिवा रागादि द्वारा आत्मा का निर्णय नहीं होता।

७-प्रश्नः—सम्यग्दर्शन किस प्रकार होता है ?

उत्तर:—सम्यग्दर्शन अर्थात् मिथ्यात्व से मुक्ति; वह सम्यग्दर्शन भी स्वसंवेदनरूप स्वानुभूति द्वारा प्रगट होता है।

८-प्रश्न:—आगम में मोक्ष के लिये काहे का विधान-आदेश है ?

उत्तर:—मोक्ष के लिये ज्ञानस्वरूप आत्मा की अनुभूति करने का ही आगम में विधान अर्थात् आदेश है।

आचार्यदेव १०५ वें कलश में कहते हैं कि-आत्मा ज्ञानस्वरूप परिणमित हो, वही मोक्ष का हेतु है, और उसके अतिरिक्त अन्य जो कुछ है, वह बंध का हेतु है।

''ततो ज्ञानात्मत्वं भवनमनुभूतिर्हि विहितम्''

इसलिये ज्ञानस्वरूप होने का अर्थात् अनुभूति करने करने का ही आगम में विधान है। देखो, यह जिनागम का आदेश! जिनागम की आज्ञा! यह जिनागम का प्रसिद्ध ढँढेरा है कि मोक्ष के लिये इस ज्ञानस्वरूप आत्मा की अनुभूति करो।

९-प्रश्न:—मोक्षमार्ग का प्रारम्भ कैसे होता है ?

उत्तर:—स्वरूप के अनुभव द्वारा ही मोक्षमार्ग का प्रारम्भ होता है। ज्ञानस्वरूप आत्मा की अनुभूति को ही भगवान ने मोक्ष का कारण कहा है।

१०-प्रश्न:—मोक्ष के कारणरूप सम्यग्ज्ञान कैसा है ?

उत्तर:—सम्यग्ज्ञान 'सरस' है, अर्थात् सहज परमानन्दरूपी रस से परिपूर्ण है।

११-प्रश्न:—उत्कृष्ट कौन है ?

उत्तर:—पूर्णरूप सम्यग्ज्ञान वह उत्कृष्ट है।

१२-प्रश्न:—कृतकृत्य कौन है ?

उत्तर:—मोक्ष के कारणरूप जो पूर्णज्ञान है, वह कृतकृत्य है; क्योंकि करने योग्य समस्त कार्य उसने कर लिये हैं।

१३-प्रश्न:—करने योग्य कार्य क्या हैं ?

उत्तर:—आत्मा और बंध को सर्वथा भिन्न करके आत्मा को मोक्ष की प्राप्ति करना ही करने योग्य कार्य है। केवलज्ञान आत्मा को मोक्ष प्राप्त कराता है, इसलिये कृतकृत्य है।

१४-प्रश्न:—मोक्ष में कौन जयवंत वर्तता है ?

उत्तर:—पुरुष को मुक्ति प्राप्त करानेवाला पूर्णज्ञान मोक्ष में जयवंत वर्तता है।

इसप्रकार ज्ञान का जयवंतपना कहकर मोक्ष अधिकार का मंगल किया।

१५-प्रश्नः—मोक्ष की प्राप्ति किस प्रकार होती है ?

उत्तरः—बंधन का छेद करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

१६-प्रश्नः—बंधन को जानने से मोक्ष होता है या नहीं ?

उत्तरः—नहीं; बंध के ज्ञान मात्र से मोक्ष नहीं होता, किन्तु बन्धन का छेद करने से ही मोक्ष होता है।

१७-प्रश्नः—जीव कब बंधन से मुक्त होता है ?

उत्तरः—जब जीव शुद्ध हो अर्थात् शुद्ध सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमित हो, तभी वही कर्मबंध से मुक्त होता है और मोक्ष प्राप्त करता है। इसप्रकार शुद्धतारूप परिणमन ही मोक्ष का कारण है।

१८-प्रश्नः—मोक्ष की साधना करनेवाला जीव कब होता है ?

उत्तरः—जगत् में मोक्ष की साधना करनेवाले साधक जीव त्रिकाल होते ही है।

१९-प्रश्नः—तीर्थंकरनामकर्म का बन्ध कब होता है ?

उत्तरः—साधकदशा में ही तीर्थंकरनामकर्म का बन्ध होता है।

२०-प्रश्नः—तीर्थंकरनामकर्म का बन्ध करनेवाले जीव कब होते हैं ?

उत्तरः—जगत् में तीर्थंकरनामकर्म का बन्ध करनेवाले जीव त्रिकाल होते हैं। उसीप्रकार आहारकशरीर और आहारक अंगोपांग की मध्यम स्थिति का बंध करनेवाले जीव भी जगत् में सदैव विद्यमान होते हैं—ऐसा श्री कषाय प्राभृत पु० ३, पृष्ठ २४३ में कहा है। आहारकशरीर और आहारक अंगोपांग इन प्रकृतियों का बन्ध साधकदशा में वर्तते हुए मुनियों को ही होता है।

२१-प्रश्नः—कर्म बन्धन के प्रदेश, प्रकृति आदि का विचार करते रहना, वह बन्धन से छूटने का कारण है या नहीं ?

उत्तरः—नहीं; कर्म बन्धन से जकड़े हुए जीव को बन्धन के विचार बन्धन से छूटने का कारण नहीं है। जिसप्रकार बेड़ी में पड़े हुए व्यक्ति को बेड़ी के बन्धन आदि का विचार उस बन्धन से छूटने का कारण नहीं है, किंतु बेड़ी के बन्धन का छेद करना ही उस बन्धन से छूटने का उपाय है; उसी प्रकार कर्मबन्ध से बंधे हुए जीव को उस बन्धन का विचार बन्धन से छूटने का कारण नहीं है, किन्तु स्वभावोन्मुख होकर बन्धन का छेद करना ही उस बन्धन से छूटने का उपाय है।

२२-प्रश्नः—मोक्ष के लिये रुदन करे और झूरे तो अवश्य मुक्ति हो - यह बात सच है ?

उत्तरः—मोक्ष के लिए रुदन करे तो अवश्य मुक्ति हो-यह बात सत्य नहीं है; रुदन तो आर्त परिणाम है, वह मोक्ष का उपाय नहीं है।

२३-प्रश्नः—मोक्ष किस प्रकार होता है ?

उत्तरः—आत्मस्वभावोन्मुख होकर उसमें एकाग्र होना ही मोक्ष का उपाय है।

२४-प्रश्नः—कर्म बन्धन के विचार करते रहने से मोक्ष हो जायेगा—ऐसा माननेवाले कैसे हैं ?

उत्तरः—कर्म बन्धन का विचार, वह शुभ विकल्प है; उस शुभ विकल्प के द्वारा मोक्ष हो जायेगा—ऐसा जो मानते हैं, उनकी बुद्धि शुभराग के ध्यान द्वारा अंध हो गई है, वे शुभराग में ही लीन वर्तते हैं किंतु आत्मस्वभावोन्मुख नहीं होते। ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव को यहाँ समझाते हैं कि हे भाई! शुभ विचार से मोक्ष नहीं होता।

२५-प्रश्नः—तो फिर मोक्ष का कारण क्या है ?

उत्तरः—आत्मा और बन्ध दोनों को भिन्न-भिन्न जानकर उनका द्विधाकरण करना ही मोक्ष का कारण है।

२६-प्रश्नः—यह मोक्ष का उपाय किसे समझाते हैं ?

उत्तरः—मोक्षार्थी जीव जिज्ञासापूर्वक पूछता है कि प्रभो! बंध को जानने से या उसके विचार करते रहने से यदि मोक्ष नहीं होता, तो किसप्रकार होता हैं ?—ऐसा पूछनेवाले जिज्ञासु शिष्य को यहाँ आचार्यदेव मोक्ष का उपाय समझाते हैं।

२७-प्रश्नः—कर्मबंध का छेद किस प्रकार होता है ?

उत्तरः—ज्ञानस्वभावी आत्मा में एकाग्र होने से कर्मबंध का छेद होता है।

२८-प्रश्नः—मोक्ष का पुरुषार्थ कौन सा है ?

उत्तरः—आत्मा के और बंध के स्वभाव को भिन्न-भिन्न जानकर आत्मस्वभाव की ओर उन्मुख होना तथा बंधभाव से विरक्त होना ही मोक्ष का पुरुषार्थ है।—ऐसा पुरुषार्थ ही मोक्ष का कारण है।

२९-प्रश्नः—मात्र यही मोक्ष का कारण क्यों है ?

उत्तरः—क्योंकि जो जीव शुद्ध चैतन्यस्वरूप आतमा और उससे विरुद्ध बंध—उन

दोनों के स्वभाव को भिन्न-भिन्न जानकर आत्मस्वभाव में एकाग्र होता है और बंध से विराम लेता है, वही मोक्ष प्राप्त करता है, इसलिये आत्मा और बंध का द्विधाकारण ही मोक्ष का उपाय है - ऐसा नियम है।

३०-प्रश्नः—शुभराग मोक्ष का कारण है या नहीं ?

उत्तरः—नहीं, शुभराग तो बंध का ही कारण है; वह मोक्ष का कारण नहीं है।

३१-प्रश्नः—आत्मा और बंध को पृथक् करने का साधन क्या है ?

उत्तरः—प्रज्ञारूपी छैनी ही उन्हें छेदन का साधन है।

३२-प्रश्नः—आत्मा कैसा है ? उसका लक्षण क्या है ?

उत्तरः—आत्मा तो ज्ञायकस्वरूप है; चैतन्य उसका लक्षण है।

३३-प्रश्नः—बंध कैसा है ? उसका लक्षण क्या है ?

उत्तरः—बंध, वह आत्मा से विरुद्ध भाव है; रागादिक उसका लक्षण है।

—इसप्रकार आत्मा और बन्ध के लक्षण भिन्न-भिन्न है।

३४-प्रश्नः—आत्मा और बन्ध किस प्रकार पृथक् होते हैं ?

उत्तरः—आत्मा और बंध के भिन्न-भिन्न लक्षणों की सूक्ष्म अन्तर्सन्धि में प्रज्ञाछैनी सावधान होकर मारने से वे पृथक् हो जाते हैं।

३५-प्रश्नः—प्रज्ञाछैनी अर्थात् क्या ?

उत्तरः—प्रज्ञा अर्थात् भेदज्ञानरूपी बुद्धि।

३६-प्रश्नः—वह प्रज्ञा कैसी है ?

उत्तरः—वह प्रज्ञा 'भगवती' है, महिमावंत है।

३७-प्रश्नः—आत्मा और बंध को छेदने के लिये यह भगवती प्रज्ञा ही एक साधन है तो दूसरा साधन क्यों नहीं है ?

उत्तरः—क्योंकि निश्चय से अपने से भिन्न साधन का अभाव होने से भगवती प्रज्ञा ही छेदनात्मक साधन है।

३८-प्रश्नः—देह की क्रिया आत्मा और बन्ध को पृथक् करने का साधन है या नहीं ?

उत्तरः—नहीं; देह की क्रिया, वह साधन नहीं है क्योंकि वह अपने से भिन्न है और मोक्ष के लिये अपने से भिन्न साधन का अभाव है।

३९-प्रश्नः—शुभराग, वह मोक्ष का साधन है या नहीं ?

उत्तरः—नहीं; शुभराग मोक्ष का साधन नहीं है; क्योंकि वह भी वास्तव में आत्मा के स्वभाव से भिन्न है, और मोक्ष के लिये अपने से भिन्न साधन का अभाव है।

४०-प्रश्नः—प्रज्ञा किस प्रकार मोक्ष का साधन है ?

उत्तरः—अन्तर्मुख होकर एकाग्र हुआ ज्ञान, वह 'भगवती प्रज्ञा' है; आत्मा के साथ अभिन्न वर्तती हुई वह प्रज्ञा ही मोक्ष का साधन होती है।

४१-प्रश्नः—यहाँ मोक्षार्थी जीव का कार्य क्या है ?

उत्तरः—आत्मा और बंध को भिन्न करना ही यहाँ मोक्षार्थी जीव का कार्य है।

४२-प्रश्नः—उस कार्य का कर्ता कौन है ?

उत्तरः—मोक्षार्थी जीव उस कार्य का कर्ता है।

४३-प्रश्नः—उस कर्ता का साधन क्या है ?

उत्तरः—मोक्षरूपी कार्य करने में आत्मा के साधन की 'मीमांसा' करते हुए भगवती प्रज्ञा ही उसका साधन है, उससे भिन्न अन्य साधन का अभाव है।

४४-प्रश्नः—'मीमांसा' का अर्थ क्या ?

उत्तरः—'मीमांसा' अर्थात् सूक्ष्म विश्लेषण, गहरी विचारणा। आत्मा में उतरकर गहरी जाँच करने पर भगवती प्रज्ञा ही आत्मा के मोक्ष का साधन है।

४५-प्रश्नः—ज्ञानी किस पंथ पर चल रहे हैं ?

उत्तरः—ज्ञानी अन्तर में ज्ञान को एकाग्र करते हुए और राग को अपने से भिन्न जानते हुए मोक्षपथ पर चल रहे हैं।

४६-प्रश्नः—अज्ञानी किस पंथ पर चल रहा है ?

उत्तरः—राग से धर्म माननेवाला अज्ञानी संसार के पथ पर अग्रसर हो रहा है।

४७-प्रश्नः—नव तत्त्वों में जीवतत्त्व कैसा है ?

उत्तरः—ज्ञान जिसका परमस्वभाव है—ऐसा जीवतत्त्व है, वह रागादि से भिन्न है।

४८-प्रश्नः—राग कौन-सा तत्त्व है ?

उत्तरः—राग का बंधतत्त्व में समावेश होता है।

४९-प्रश्नः—आत्मा और बंध की सूक्ष्म संधि में प्रज्ञा छैनी को पटनके का क्या अर्थ है ?

उत्तर:—राग और आत्मा के भिन्न-भिन्न लक्षणों को पहिचानकर राग के साथ ज्ञान की एकता नहीं करना और ज्ञान को अन्तरोन्मुख करके आत्मस्वभाव के साथ एकता करना;—इसप्रकार प्रज्ञाछैनी को पटकना, सो आत्मा और बंध को भिन्न-भिन्न करने का उपाय है।

५०-प्रश्न:—यह प्रज्ञाछैनीरूपी साधन आत्मा से भिन्न है या अभिन्न ?

उत्तर:—प्रज्ञाछैनी अर्थात् अंतर में एकाग्र हुआ ज्ञान, वह आत्मा के साथ अभेद होने से आत्मा के साथ अभिन्न है।

५१-प्रश्न:—रागादिक आत्मा से भिन्न हैं या अभिन्न ?

उत्तर:—रागादिक वास्तव में आत्मा से भिन्न हैं, क्योंकि उस राग के बिना भी आत्मा की प्राप्ति संभवित है। ज्ञान को अन्तर में एकाग्र करने पर वहाँ राग की उत्पत्ति संभव नहीं है किंतु राग रहित आत्मा की प्राप्ति होती है। इसप्रकार राग और आत्मा की भिन्नता सिद्ध होती है।

५२-प्रश्न:—राग और आत्मा पृथक् हो सकते हैं ?

उत्तर:—हाँ, प्रज्ञाछैनी द्वारा छेदने पर वे अवश्य ही पृथक् हो जाते हैं।

५३-प्रश्न:—मोक्षमार्ग में राग की अपेक्षा है या उपेक्षा ?

उत्तर:—मोक्षमार्ग में राग की उपेक्षा है।

५४-प्रश्न:—राग की उपेक्षा कौन कर सकता है ?

उत्तर:—जो राग को अपने स्वभाव से भिन्न जाने, वही उसकी उपेक्षा कर सकता है।

५५-प्रश्न:—राग, मोक्ष का साधन क्यों नहीं है ?

उत्तर:—राग तो बहिर्मुख वृत्ति है और मोक्षमार्ग तो अंतर्मुखी है; बहिर्मुख वृत्ति, अंतर्मुख होने का साधन कैसे हो सकती है ? नहीं हो सकती; इसलिये राग, वह मोक्ष का साधन नहीं है।

५६-प्रश्न:—मोक्षमार्ग कैसा है ?

उत्तर:—मोक्षमार्ग तो अमृत है।

५७-प्रश्न:—राग कैसा है ?

उत्तर:—राग तो विष है।

५८-प्रश्न:—राग बन्धमार्ग है या मोक्षमार्ग ?

उत्तर:—राग तो बन्धमार्ग है; मोक्षमार्ग वीतरागभावरूप है, उसका साधन राग कैसे हो सकता है ?

५९-प्रश्नः—शुभराग द्वारा बंध का छेदन होता है या नहीं ?

उत्तरः—नहीं होता; क्योंकि राग स्वयं बंधस्वरूप है; फिर उसके द्वारा बंध का छेदन कैसे होगा ? वीतरागी प्रज्ञा द्वारा ही बंध का छेदन होता है, इसलिये वही मोक्ष का साधन है।

६०-प्रश्नः—मोक्ष का साधन भले ही भगवती प्रज्ञा हो, किंतु उससे पहले सम्यग्दर्शन का साधन तो दूसरा (रागादि) हैं न ?

उत्तरः—नहीं; जिसप्रकार मोक्ष का साधन भगवती प्रज्ञा ही है, उसी प्रकार मोक्षमार्ग के प्रारम्भ से भी वही एक साधन है। सम्यग्दर्शन का साधन भी वही है। रागादि साधन नहीं है।

६१-प्रश्नः—आत्मा कैसा और बन्ध कैसा है ?

उत्तरः—आत्मा चेतक है और बन्ध चेत्य है, वह चेतन नहीं है।

६२-प्रश्नः—आत्मा और बन्ध एक हैं या भिन्न ?

उत्तरः—आत्मा चेतक है और बन्ध चेत्य है; वे दोनों निश्चय से भिन्न है, किंतु अज्ञानी जीव को उनका भेदज्ञान न होने से रागादि बंधभाव भी मानों आत्मा हों—इसप्रकार उनकी एकता भासित होती है।

६३-प्रश्नः—अब मोक्षार्थी शिष्य भेदज्ञान की तीव्र आकांक्षा से पूछता है कि प्रभो! आत्मा और बंध की एकता अज्ञान से ही भासित होती है, किन्तु सचमुच वे भिन्न हैं—ऐसा आप कहते हैं; तो फिर उन्हें प्रज्ञाछैनी द्वारा कैसे पृथक् किया जा सकता है, वह समझाइये।

उत्तरः—आचार्यदेव जिज्ञासु शिष्य को समझाते हैं कि हे भव्य! आत्मा और बन्ध दोनों के लक्षण भिन्न-भिन्न जानकर उनकी सूक्ष्म संधि के बीच पुरुषार्थपूर्वक सावधान होकर प्रज्ञाछैनी को पटकने से उसका छेदन किया जा सकता है—ऐसा हम जानते हैं।

[—क्रमशः]

सम्यग्दृष्टि

नि:शंक और निर्भय होता है

[समयसार, निर्जरा अधिकार के प्रवचनों से]

(अषाढ़ कृष्णा ८-९-१० वीर सं० २४८३)

लेखाङ्क-२] [अंक १५८से आगे

क्या सम्यग्दर्शन संयोग के अवलम्बन से हुआ है जो संयोग उसका नाश करे ?—नहीं; सम्यग्दर्शन तो स्वभाव के अवलम्बन से ही हुआ है, इसलिये ज्ञानस्वभाव के अवलम्बन से धर्मी नि:शंकरूप से वर्तता है, बाह्य संयोग के भय से वह कभी स्वरूप में शंकित नहीं होता। जहाँ नि:शंकता और निर्भयता से जगमगाता हुआ समयक्त्वरूपी सूर्य का उदय हुआ, वहाँ उस सूर्य का प्रताप आठों कर्मों को जलाकर भस्म कर देता है। सम्यक्त्वी अल्पकाल में ही सर्व कर्मों का क्षय करके परम सिद्ध पद को प्राप्त करता है, वह उसके सम्यग्दर्शन का प्रताप है।

मैं सहज ज्ञान और आनन्दस्वरूप हूँ—ऐसी जिन्हें अंतर्दृश्टि हुई है, वे सम्यग्दृष्टि जीव अत्यन्त नि:शंक तथा निर्भय होते हैं;—क्यों ?—क्योंकि वे अपने ज्ञानानन्दस्वरूप के अतिरिक्त समस्त परद्रव्यों के प्रति अत्यन्त निरपेक्षरूप से वर्तते हैं। रागादि हों, उनकी भी अपेक्षा नहीं है; अर्थात् ऐसी किंचित्मात्र बुद्धि नहीं है कि यह राग मुझे कुछ लाभ करेगा। मैं तो राग से पार ज्ञानस्वरूप ही हूँ, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ मेरा है ही नहीं—इसप्रकार अत्यन्त नि:शंक दृढ़ निश्चयी होने से सम्यग्दृष्टि जीव अत्यन्त निर्भय है। सात प्रकार के भय उनके नहीं होते। (सात प्रकार के भय में से इहलोक, परलोक और वेदना—इन तीन भयों के अभाव का विवेचन पहले किया जा चुका है; उसके अतिरिक्त अरक्षा, अगुप्ति, मरण और अकस्मात्—इन चार प्रकार के भयों का भी सम्यग्दृष्टि को अभाव होता है,—उसका यह विवेचन चल रहा है।)

(४) स्वत: सिद्ध ज्ञान का अनुभवन करनेवाले ज्ञानी को अरक्षा का भय नहीं होता।

ज्ञान को अरक्षा का भय नहीं होता; प्रतिकूलता आ-पड़ेगी तो मेरी रक्षा कैसे होगी ?—ऐसा भय ज्ञानी को नहीं होता; क्योंकि वह जानता है कि मैं तो नित्य ज्ञानस्वरूप हूँ, बाह्य प्रतिकूलता आकर मेरे ज्ञानस्वभाव का नाश नहीं कर सकती; मेरा ज्ञान तो स्वत: रक्षित है, उसमें प्रतिकूलता का

प्रवेश ही नहीं है। इसप्रकार नि:शंकता होने से कारण ज्ञानी को अरक्षा भय नहीं होता—ऐसा अब कहते हैं—

यत्सन्नाशमुपैति तन्न नियतं व्यक्तेति वस्तुस्थिति-
र्ज्ञानं सत्स्वयमेव तत्किल ततस्तात्रं किमस्यापरैः।
अस्यात्राणामतो न किंचन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निश्शंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विंदति॥

धर्मात्मा जानता है कि मेरा ज्ञानत्वरूप स्वयमेव सत् है, और जो सत् है, उसका कभी नाश नहीं होता—ऐसी ही वस्तुस्थिति है। इसप्रकार मेरा ज्ञान स्वयं स्वभाव से ही रक्षित है, तो फिर किसी अन्य द्वारा उसकी रक्षा कैसी ? मेरे ज्ञान में अरक्षितता किंचित् भी नहीं है; ऐसी नि:शंकता में धर्मी को अरक्षा का भय कहाँ से होगा ? वह तो नि:शंका और निर्भय वर्तता हुआ अपने स्वत: रक्षित ज्ञान का अनुभवन करता है।

देखो न, आजकल तो संसार में अणुबम का कितना भय है ? अणुबम गिरे तो किस प्रकार रक्षा करना चाहिये... और अमुक रोग से कैसे बचें ?—इसप्रकार बाह्य से रक्षा के उपाय ढूँढ़ता है और भयभीतरूप से वर्तता है; किन्तु भाई ! अणुबम या रोग में ऐसी शक्ति नहीं है कि वे तेरे ज्ञानस्वरूप का नाश कर दें; इसलिये ज्ञानस्वरूप की प्रतीति कर तो अरक्षा का भय दूर हो जाये। धर्मी जानता है कि मैं तो ज्ञानस्वरूप हूँ, मेरा ज्ञानस्वरूप स्वयमेव सत् होने से स्वयं अपने से रक्षित ही है; इसलिये कोई दूसरा आकर मेरे ज्ञान को बिगाड़ देगा—ऐसा भय धर्मात्मा को नहीं होता। यह शरीर तो संयोगी और नाशवान ही है, उसकी रक्षा के लाख उपाय करने पर भी उसकी रक्षा नहीं हो सकती; जबकि आत्मा तो चैतन्यस्वरूप असंयोगी स्वत: सिद्ध सत् है; उसका नाश किसी से नहीं हो सकता। ऐसे चैतन्यस्वरूप का जो निरन्तर अनुभव करता है—ऐसे ज्ञानी को अपनी अरक्षा का भय कहाँ से होगा ?—वह तो नि:शंकरूप से सदैव सहज ज्ञानस्वरूप का ही अनुभव करता है।

सत् वस्तु का कभी नाश नहीं होता; यह ज्ञानस्वरूप आत्मा भी सत्ता स्वरूप वस्तु है। आत्मा का स्वरूप कहीं ऐसा नहीं है कि अन्य द्वारा रक्षा की जाये तभी वह टिका रह सकता है, अन्यथा उसका नाश हो जायेगा। आत्मा तो स्वत: सिद्ध अविनाशी है, उसका नाश कभी होता ही नहीं।—ऐसे आत्मा को जानते हैं, इसलिये ज्ञानी को अपनी अरक्षा का भय नहीं होता।

(५) स्वरूप से ही 'गुप्त'—ऐसे ज्ञानी को अगुप्ति का भय नहीं होता।

आत्मा के ज्ञानानन्दस्वरूप की ओर उन्मुख होकर उसकी निःशंक प्रतीति करना, सो सम्यग्दर्शन धर्म है। ऐसे सम्यग्दर्शन द्वारा निःशंक धर्मात्मा को सात प्रकार के भय नहीं होते, उसका यह वर्णन है। (१-२) चैतन्यस्वरूप लोक ही अपना है और अन्य किसी के द्वारा वह बिगाड़ा नहीं जा सकता; और चैतन्यस्वरूप को छोड़कर आत्मा कहीं अन्यत्र नहीं जाता, ऐसा जानने के कारण ज्ञानी को इहलोक या परलोक सम्बन्धी भय नहीं होता। (३) आत्मा तो चैतन्य का वेदन करनेवाला है; उसमें बाहर की अन्य कोई वेदना नहीं होती, इसलिये ज्ञानी को वेदना का भय नहीं होता; (४) और आत्मा का सत् चैतन्यस्वरूप अपने से ही रक्षित स्वयं सिद्ध होने से उसका कभी किसी से नाश नहीं होता, इसलिये ज्ञानी को अरक्षा का भय नहीं होता।—इसप्रकार चार भय का अभाव कहा। अब कहते हैं कि पाँचवाँ अगुप्ति भय भी ज्ञानी को नहीं है—

स्वरूपं किल वस्तुनोस्ति परमा गुप्तिः स्वरूपे न य—
च्छक्तः कोऽपि परः प्रवेष्टुमकृतं ज्ञानं स्वरूपं च नुः
अस्यागुप्तिस्तो न काचन भवेत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निःश्शंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विंदति॥१५८॥

वास्तव में वस्तु का स्वरूप ही वस्तु की परम गुप्ति है; क्योंकि वस्तु के निज स्वरूप में अन्य का प्रवेश नहीं हो सकता। आत्मा तो सहज ज्ञानस्वरूप है, उसके ज्ञानस्वरूप में अन्य किसी का प्रवेश कभी नहीं होता, इसलिये ज्ञानस्वरूप स्वयं अपने से ही गुप्त है।—ऐसे अपने ज्ञानस्वरूप को जानते हुए धर्मी को अगुप्ति का भय नहीं होत। मेरे स्वरूप में अन्य कोई आ ही नहीं सकता, तो फिर कोई चोर आदि आकर मेरे स्वरूप को चुरा ले जाये या बिगाड़ दे—यह बात ही कहाँ रही ?

देखो, तारंगा गये थे, वहाँ एक सुन्दर गुफा थी; वहाँ सिंह-बाघ का भय होने से लोहे के सलियों की बाड़ थी, ताकि कोई सिंह-बाघ अन्दर प्रवेश न कर सके; परन्तु इस ज्ञानगुफा में विद्यमान आत्मा तो स्वभाव से ही ऐसा गुप्त है कि उसमें कभी कोई प्रवेश कर ही नहीं सकता। मेरे ज्ञानस्वरूप में किसी दूसरे का प्रवेश ही नहीं है, ऐसा जाननेवाले ज्ञानी को स्वरूप की अगुप्ति का भय नहीं होता। ज्ञान आत्मा के साथ सदैव एकाकाररूप से ही रहता है, इसलिये आत्मा सदैव अपनी ज्ञानगुफा में ही विद्यमान है; ज्ञानगुफा में अन्य किसी का प्रवेश ही नहीं है—फिर अगुप्ति का भय कहाँ से होगा ? मेरे ज्ञान में दूसरा कोई नहीं आ सकता, और मेरा ज्ञान, आत्मा से पृथक् होकर

किसी दूसरे में नहीं जाता; मेरा ज्ञानस्वरूप आत्मा स्वयं अपने स्वरूप में ही गुप्त है। इसप्रकार नि:शंकरूप से जानता हुआ ज्ञानी निर्भयरूप से अपने सहजज्ञान का ही निरंतर अनुभव करता है, उसे अगुप्ति का भय नहीं होता।

जिसप्रकार लोक में कोई रुपया, सोना या गहने आदि वस्तुओं को छिपाकर न रखे तो कोई उठा ले जाता है। वहाँ पैसे की रक्षा के लिये ममतावाले को अगुप्ति का भय होता है, परन्तु पैसा तो पृथक् वस्तु है, इसलिये वह तो चला जाता है, उसकी रक्षा के लाख उपाय करे, तथापि उसकी रक्षा नहीं हो सकती; किन्तु यहाँ ज्ञान में वैसा अगुप्ति का भय नहीं है; क्योंकि ज्ञान तो आत्मा में सदैव अभिन्न होने से उसे कोई ले नहीं जा सकता, इसलिये वह तो स्वत: रक्षित और गुप्त ही है—ऐसे निज स्वरूप को जाननेवाले ज्ञानी को अगुप्ति का भय नहीं होता।

'गुप्ति' अर्थात् जिसमें चोर आदि प्रवेश न कर सकें ऐसा किला, भोंयरा आदि निर्भय स्थान; वहाँ प्राणी निर्भयरूप से रह सकता है। यदि गुप्त प्रदेश न हो, किन्तु खुला हो तो उसमें रहनेवाले प्राणी को भय लगता है। उसीप्रकार यहाँ कहते हैं कि क्या आत्मा को रहने के लिये ऐसा कोई निर्भय गुप्त स्थान है कि जिसमें वह निर्भयरूप से रह सके?—तो कहते हैं कि हाँ, आत्मा का ज्ञानस्वरूप ही आत्मा की परम गुप्ति अर्थात् अभेद्य किला है, क्योंकि आत्मा के ज्ञानस्वरूप में अन्य कोई प्रवेश नहीं कर सकता।—ऐसे आत्मस्वरूप को जानता हुआ ज्ञानी अपनी ज्ञानगुफा में निर्भयरूप से निवास करता है; वहाँ उसे अगुप्ति का भय नहीं होता।

(६) शाश्वत् चैतन्य प्राण का अनुभव करनेवाले ज्ञानी को मरण का भय नहीं होता।

प्राणोच्छेदमुदाहरति मरणं प्राण: किलास्यात्मनो
ज्ञानं तत्स्वयमेव शाश्वततया नोच्छिद्यते जातुचित्।
तस्यातो मरणं न किंचन भवेत्तद्भी: कुतो ज्ञानिनो
नि:श्शंका: सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विंदति॥१५९॥

ज्ञानी को मरण का भय नहीं होता, क्योंकि आत्मा कभी मरता ही नहीं, आत्मा तो अपने चैतन्य प्राण से सदा जीवंत है।—ऐसे आत्मा को जहाँ नि:शंकरूप से जाना, वहाँ मरण का भय कहाँ से होगा? जिसे देह में आत्मबुद्धि है—ऐसा अज्ञानी जीव, देह में कुछ फेरफार होने से 'हाय-हाय! मैं मर जाऊंगा!'—इसप्रकार मरण से भयभीत रहता है; किन्तु ज्ञानी ने तो आत्मा को देह से अत्यन्त भिन्न जाना है, वहाँ उसे मरण का डर कहाँ से होगा?

प्राणों के नाश को मरण कहते हैं। आत्मा के प्राण तो निश्चय से ज्ञान है; वह ज्ञान-प्राण स्वयमेव शाश्वत् होने से उसका कभी नाश नहीं होता, इसलिये आत्मा का मरण होता ही नहीं। जड़ प्राण तो सचमुच आत्मा से पृथक् हैं, वह कहीं आत्मा का सच्चा स्वरूप नहीं है। इसलिये उन जड़ प्राणों के वियोग से आत्मा कहीं मर नहीं जाता; आत्मा तो अपने स्वाभाविक चैतन्य प्राण से सदैव जीवित ही है,—तो फिर ऐसे आत्मस्वरूप को जाननेवाले ज्ञानी को मरण का भय कहाँ से होगा? ज्ञानी तो चैतन्यप्राण से सदैव जीवंत ऐसे अपने आत्मा का निःशंकरूप से अनुभव करता है। 'किसी संयोग द्वारा मेरा मरण हो जायेगा'—ऐसी मरण की शंका या भय उसे नहीं होता।

यह जो इन्द्रियादि दस प्राण हैं, वे तो आत्मा को संयोगरूप हैं, वे कहीं आत्मा के स्वभावरूप नहीं हैं; इसलिये उन प्राणों के वियोग से कहीं आत्मा का नाश नहीं हो जाता। आत्मा के स्वभावरूप प्राण तो चैतन्य है, उस चैतन्य प्राण का आत्मा को कभी वियोग नहीं होता, इसलिये आत्मा का मरण कभी होता ही नहीं।

इस शरीर के आश्रित दस प्राण हैं, वे जड़ हैं; उन प्राणों के वियोग को लोक में मरण कहा जाता है; किन्तु ज्ञानी तो जानता है कि मैं तो सत् चैतन्यमय हूँ, मेरे प्राण तो चैतन्यमय हैं, चैतन्य प्राण का मुझे कभी वियोग नहीं होता; इसलिये मेरा मरण नहीं होता। पाँच इन्द्रियाँ, श्वास, आयु अथवा मन-वचन-काय, वे सब जड़ हैं, वे मुझसे भिन्न हैं, उन जड़ प्राणों से जीनेवाला मैं नहीं हूँ, मैं तो अपने चैतन्यप्राण से जीनेवाला हूँ। मेरे चैतन्य प्राण शाश्वत् हैं—ऐसा जाननेवाले धर्मी को मृत्यु का भय नहीं होता। मरण ही मेरा नहीं है, तो फिर मरण का भय कैसा? मरण तो शरीर के संयोग-वियोग से कहा जाता है, किन्तु आत्मा चैतन्यस्वरूप से नित्य रहनेवाला है, वह कहीं जन्मता या मरता नहीं है। आत्मा जीवनशक्ति से सदैव जीवंत है, उसका कभी नाश नहीं होता, इसलिये ऐसे आत्मस्वभाव की दृष्टिवंत धर्मात्मा को मरण का भय नहीं होता।

एक आदमी का लड़का मर गया। किसी ने उसे खबर दी कि तुम्हारा लड़का मर गया। यह सुनकर वह आदमी कहने लगा कि—'हम धर्मी हैं, इसलिये हमारा लड़का छोटी उम्र में नहीं मर सकता।' ऐसा उत्तर सुनकर कोई कहे कि—देखो, इसे धर्म की कैसी दृढ़ता है! लेकिन ज्ञानी तो कहते हैं कि वह धर्मी नहीं, किन्तु महामूढ़ है। जो धर्मी हो, उसके लड़के छोटी उम्र में न मरें—ऐसा कोई नियम नहीं है। धर्म का सम्बन्ध कहीं लड़के की उम्र के साथ नहीं है। कोई अधर्मी हो, तथापि उसके लड़के अधिक जीते हैं, और धर्मी के लड़के छोटी उम्र में मर जाते हैं। अरे,

कभी-कभी धर्मी की आयु भी कम होती है ! पापी अधिक जीते हैं और धर्मी की आयु कर्म होती है—ऐसा भी इस संसार में होता है। आठ वर्ष की छोटी सी उम्र हो, तथापि आत्मा में लीन होकर केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष जाते हैं; इसलिये कम-अधिक उम्र से धर्मी का माप नहीं निकलता। धर्मी का माप तो इसप्रकार है कि उसने अपने आत्मा को शाश्वत् चैतन्यप्राण से जीवित रहनेवाला जाना है, इसलिये उसे मरण का भय नहीं होता। वह निःशंकता और निर्भयतापूर्वक अपने सहज ज्ञानस्वरूप का ही अनुभवन करता है; इसलिये शरीर छूटने के अवसर पर भी उसे निर्जरा ही होती जाती है।

(७) पर से भिन्न ज्ञानस्वभाव की दृष्टि में ज्ञानी को अकस्मात् का भय नहीं होता।

आत्मा नित्यस्थायी ज्ञान-आनन्दस्वरूप वस्तु है। उसकी जहाँ प्रतीति हुई, वहाँ ज्ञानी को अकस्मात का ऐसा भय नहीं होता कि—'मेरे ज्ञान में अचानक कोई अनिष्ट आ पड़ेगा तो !' ज्ञानी तो जानता है कि मेरा ज्ञान अनादि-अनंत एकरूप अचल ज्ञानस्वरूप ही रहनेवाला है; उसमें कोई परवस्तु या परभाव अचानक आकर ज्ञान को बिगाड़ जाये—ऐसा नहीं होता, इसलिये ज्ञानी को अकस्मात का भय नहीं होता—ऐसा अब कहते हैं—

एकं ज्ञानमनाद्यनंतमचलं सिद्धं किलैतत्स्वतो
यावत्तावदिदं सदैव हि भवेन्नात्र द्वितीयोदयः।
तन्नाकस्मिकमत्र किंचन भेवत्तद्भीः कुतो ज्ञानिनो
निश्शंकः सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विंदति॥१६०॥

धर्मी जानता है कि मेरा आत्मा ज्ञानस्वरूप है; मैं अनादि-अनंत ज्ञानस्वरूप ही हूँ, मेरा ज्ञान पलटकर अचानक जड़रूप हो जाये या राग हो जाये—ऐसा अकस्मात ज्ञान में कभी नहीं होता। ज्ञान तो सदैव ज्ञानरूप ही रहता है। ऐसे ज्ञान में धर्मी को अकस्मात का भय नहीं होता। ज्ञान में ज्ञान का ही उदय रहता है, ज्ञान में अन्य का उदय नहीं होता—ऐसे ज्ञान का निःशंकरूप से अनुभव करते हैं, इसलिये धर्मी जीव अकस्मात आदि के भय से निर्भय होते हैं।

धर्मी जीव का सम्यग्दर्शन अंतरंगस्वभाव के साधन से हुआ है, किसी बाह्य साधन के अवलम्बन से नहीं हुआ; इसलिये किसी बाह्य वस्तु के भय से वह अपने ज्ञानस्वरूप से च्युत नहीं होता। ज्ञानस्वरूप के अवलम्बन से वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान में निःशंक एवं निर्भयरूप से वर्तता है। सम्यग्दर्शन क्या संयोग के अवलम्बन से हुआ है जो संयोग उसका नाश करे ? नहीं; सम्यग्दर्शन तो

स्वभाव के अवलम्बन से हुआ है, इसलिये ज्ञानस्वभाव के अवलम्बन से धर्मी निःशंकरूप से वर्तता है। जगत में सात प्रकार के भय उसे नहीं होते। ज्ञानस्वभावोन्मुख हुए ज्ञान में ज्ञानी को ज्ञान के अतिरिक्त अन्य किसी भाव का उदय नहीं होता; रागादि भाव, ज्ञान के साथ कभी एकमेक नहीं हो जाते, ज्ञान में दूसरे का प्रवेश ही नहीं है, तो फिर ज्ञानी को अकस्मात का भय कहाँ से होगा? मैं तो ज्ञानस्वरूप ही हूँ, ऐसे निःशंक प्रतीति से ज्ञानी सदैव निभर्यरूप से वर्तता है।

मेरा आत्मा अनादिकाल से पहले ज्ञानस्वरूप ही था, कहीं जड़स्वरूप नहीं हो गया था; वर्तमान में भी ज्ञानस्वरूप से ही है और अनंतकाल तक सदा ज्ञानस्वरूप ही रहेगा। सदैव ज्ञानस्वरूप मेरे आत्मा में कभी शरीरादि का प्रवेश नहीं है।—इसप्रकार ज्ञान सदा ज्ञानस्वरूप ही रहता है, इसलिये उसमें अन्य का उदय ही नहीं है। ज्ञान कभी अचानक जड़रूप या विकाररूप हो जाये—ऐसा अकस्मात ज्ञान में कभी नहीं होता, इसलिये ज्ञानस्वरूप आत्मा का अनुभव करनेवाले धर्मी को अकस्मात का भय नहीं होता। अकस्मात बिजली गिरकर मेरे ज्ञान को नष्ट कर देगी तो? ऐसा भय ज्ञानी को नहीं होता, क्योंकि बिजली में ज्ञान को अन्यथा करने की शक्ति नहीं है। (इसीप्रकार सर्प, अग्नि आदि में भी समझ लेना।)

'इस समय तो सम्यक्श्रद्धा-ज्ञान वर्तता है; किंतु भविष्य में न जाने कैसा उदय आया और उसने ज्ञान का नाश कर दिया तो!'—ऐसा सन्देह या भय ज्ञानी को नहीं होता। 'जैसा वर्तमान वैसा भविष्य'—जिसप्रकार मैं वर्तमान में निःशंकरूप से ज्ञानस्वरूप वर्तता हूँ, उसीप्रकार मैं भविष्य में भी ज्ञानस्वरूप ही रहूँगा;—इसप्रकार धर्मी को निःशंक श्रद्धा है, और निःशंक होने से वह निर्भय है,—ऐसी निःशंकता एवं निर्भयता से ज्ञानस्वरूप का अनुभवन करने से उसे निर्जरा होती जाती है,—यह धर्म है।

'कोई अकल्पित अनिष्ट यकायक उत्पन्न होगा तो?'—ऐसा भय रहे, वह आकस्मिक भय है। किन्तु ज्ञानी जानता है कि मेरे ज्ञान में ज्ञान के अतिरिक्त अन्य कुछ उत्पन्न नहीं होता, इसलिये ज्ञान में कोई अकल्पित अकस्मात होता ही नहीं। इसलिये ज्ञानी को अकस्मात का भय कहाँ से होगा? ज्ञान में अकस्मात नहीं है, उसीप्रकार ज्ञेयों में भी अकस्मात नहीं है, क्योंकि जगत के पदार्थों में जो परिणमन हो रहा है, वह उनके परिणमन स्वभाव के अनुसार व्यवस्थित (क्रमबद्ध) ही है।—ऐसे वस्तुस्वभाव को जाननेवाले धर्मात्मा को आकस्मिक भय नहीं होता।

इसप्रकार ज्ञानी को सात भय नहीं होते। चारित्र की अस्थिरता के कारण कोई भय आ जाये

वह अलग बात है, किन्तु ज्ञानस्वरूप में शंका द्वारा होनेवाला भय उनके नहीं होता। किसी प्रसंग पर ऐसा भय नहीं होता कि "अरे! यह मुझे मेरे ज्ञानस्वरूप से च्युत कर देगा!" "मुझे अपने ज्ञानस्वरूप से च्युत करने में जगत में कोई समर्थ नहीं"—ऐसी नि:शंकता के कारण ज्ञानी निर्भय है—ऐसा जानना। इसप्रकार का कोई भय उसे नहीं होता कि जिससे अपने ज्ञानस्वरूप की श्रद्धा से वह च्युत हो जाये! सिंहादि का भय उसे उस समय भी अन्तर में उस भय से पार उसे चिदानन्दतत्त्व की श्रद्धा वर्तती है और इसलिये वह निर्भय है। और कोई अज्ञानी जीव सिंह-बाध के आने पर भी ज्यों का त्यों निर्भयतापूर्वक खड़ा रहे, सिंह शरीर को खा जाये, तथापि विचलित न हो, किन्तु जिसे अन्तर में राग से पार चैतन्यतत्त्व का वेदन नहीं है, संयोग और वियोग की ओर से देखता है, वह राग की मन्दता को धर्म मान रहा है, तो वह सचमुच निर्भय नहीं किन्तु अनन्त भय में डूबा हुआ है; क्योंकि ऐसे शुभराग के बिना मेरा चैतन्यतत्त्व स्थिर नहीं रह सकेगा—ऐसी शंका में ही वह स्थित है। ज्ञानी जानता है कि मेरा चैतन्यतत्त्व, परवस्तु या राग के बिना स्वत: ज्ञानस्वरूप से स्थित है। ज्ञान में से रागादि प्रगट हों—ऐसा अकस्मात कभी नहीं होता; इसलिये मेरे ज्ञान में अकस्मात नहीं होता, इसलिये मैं अपने ज्ञानस्वरूप में नि:शंक हूँ—ऐसी नि:शंकता के कारण ज्ञानी निर्भय है और उसे बंधन नहीं होता किंतु निर्जरा ही होती है।

देखो, यह सम्यग्दर्शन की महिमा! जहाँ नि:शंकता और निर्भयता से जगमगाता हुआ सम्यक्त्वरूपी सूर्य उदित हुआ, वहाँ उस सूर्य का प्रताप आठों कर्मों को जलाकर भस्म कर देता है। सम्यक्त्वी अल्पकाल में ही सर्व कर्मों का क्षय करके परम सिद्धपद को प्राप्त करता है, वह उसके सम्यक्दर्शन का प्रताप है। सम्यक्त्वी धर्मात्मा निजरस से परिपूर्ण ज्ञान का ही अनुभव करते हैं, ज्ञान के अनुभव में रागादि को किंचित् एकमेक नहीं करते; नि:शंकरूप से अपने ज्ञानस्वरूप को रागादि से अत्यन्त भिन्नरूप अनुभव करते हैं और इसप्रकार ज्ञानस्वरूप के अनुभव द्वारा वे समस्त कर्मों का नाश करके सिद्धपद को प्राप्त करते हैं।

हर्ष समाचार

पूज्य श्री कानजी स्वामी पोष शुक्ला ८ ता० १७-१-५९ को सोनगढ़ से प्रस्थान करके पोष शुक्ला १० की श्री निर्वाणधाम पावागढ़ की यात्रा करते हुए बम्बई पधारेंगे।

माघ शुक्ला १० ता० १७-२-५९ को संघ सहित बम्बई से प्रस्थान करके निम्नलिखित मार्ग द्वारा श्री मूड़बिद्री, श्री श्रवणबेलगोला (श्री बाहूबलीस्वामी) निर्वाणधाम श्री कुंथलगिरीजी, श्री मुक्तागिरीजी, श्री नैनागिरजी (रेसंदीगिर), श्री द्रौणगिरजी आदि अनेक तीर्थों की यात्रा करते हुवे अनुमानतः वैशाख शुक्ला के प्रारंभ तक सोनगढ़ पहुँचेंगे। संघ मोटर कारों एवं मोटर लारियों से यात्रा करेगा, संघ में अनुमानतः ४००-५०० यात्री होंगे।

यात्रा का मार्ग इसप्रकार है:—

बम्बई से पूना, कोलापुर, कुंभोज, बेलगांव, हुबली, गेरसप्पा (जोगकोल), सागर, हूंमच, भ.श्री कुन्दकुन्द का समाधिस्थान वरंग, मूड़बिद्री, कारकल, बेणूर, हलेविढ़, श्रवणबेलगोला, मैसूर, बैंगलोर, चित्तूर, तिरुमले, मद्रास, पोन्नूर, नेल्लोर, बेझवाड़ा, हैदराबाद होकर शोलापुर, कुन्थलगिरी, ओरगाबाद, एलोरा गुफाऐं, एजन्टा गुफाऐं, जलगांव, मलकापुर, अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ, मुक्तागिरी, अमरावती, नागपुर, रामटेक, जबलपुर, सागर, द्रोणगिर, नैनागिर, देवगढ़, पपौरा होकर बाराँ, देवली, कांकरोली, उदयपुर के मार्ग से ईडर, फतेपुर, तलोद, कलोल आदि होकर सोनगढ़ पहुँचना।

उपरोक्त मार्गों से परिचित बन्धुवों से निवेदन है कि उपरोक्त मार्ग के आसपास अन्य भी कई तीर्थ स्थान हों तो उन स्थानों का पूरा परिचय देने की कृपा करें कि वह स्थान कहाँ पर है अर्थात् उपरोक्त सड़क से किस स्थान से कहाँ जाना होगा, वह मार्ग पक्की सड़का का है या कच्चा रास्ता है, कितनी माईल दूर है आदि-आदि तथा हमारे मार्ग के संबंध में अन्य भी कोई सुझाव हो तो देने की कृपा करें।

प्रमुख
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोगनढ़ (सौराष्ट्र)

हितोपदेश

अरे जीव! तू स्थिर हो, स्थिर हो! ''अकर्ता-ज्ञातापने की दृष्टि कर! पर का मैं करता हूँ''—ऐसी अज्ञानबुद्धि के कारण तेरा अनंतानंतकाल दु:ख में व्यतीत हुआ... चौरासी के अवतारों में किसने तेरे दु:ख में भाग नहीं लिया... अपने दु:ख तूने अकेले ही सहन किये। उन दु:खों का मूल पर के कर्तृत्व की अज्ञानबुद्धि ही है; इसलिये अब वह अज्ञानबुद्धि छोड़.... पर के कर्तृत्व की बुद्धि छोड़... और अपने आत्मा में स्थिर हो... ताकि तेरे अनादि कालीन दु:खों का अन्त आये।

हे जीव! तू ज्ञानस्वरूप है... तेरा ज्ञान पर में क्या करेगा? वह पर के दु:खों को जान सकता है किन्तु उन्हें ले नहीं सकता; तथा दूसरा कोई तेरे दु:ख भी नहीं ले सकता। स्वयं अपने अज्ञानभाव से जो दु:ख उत्पन्न किया है, वह दु:ख अपने ज्ञानभाव से ही दूर होता है.. इसलिये हे जीव! अन्तरोन्मुख होकर अपने ज्ञानस्वरूप में स्थिर हो... उसमें तुझे अनाकुल शांति का वेदन होगा।

[—प्रवचन से]

विद्या का परिणाम

जिस विद्या का परिणाम आत्मा के हित में आये, अर्थात् जो विद्या मोक्ष का कारण हो, वह विद्या सम्यक् है; अर्थात् वह मोक्ष की परीक्षा में उत्तीर्ण है; और जिस विद्या का परिणाम आत्मा के हित में न आये, अथवा जो विद्या मोक्ष का कारण न हो, वह विद्या मिथ्या है अर्थात् मोक्ष की परीक्षा में वह अनुत्तीर्ण है।

अंतर्मुख होकर अतीन्द्रिय चैतन्य को जानने में जो ज्ञान प्रवर्तित नहीं होता और इन्द्रियों द्वारा मात्र बाह्य विषयों में ही वर्तता है, वह ज्ञान आत्मा को जानने के लिए अनुत्तीर्ण है। चैतन्य को जाननेरूप आत्मविज्ञान की परीक्षा में वह अनुत्तीर्ण होता है। भले ही मैट्रिक आदि बड़ी-बड़ी परीक्षाओं में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हो, किन्तु यदि चैतन्यतत्त्व को नहीं जाना तो उसका ज्ञान अनुत्तीर्ण ही है—मिथ्या ही है। और कोई जीव भले ही अनपढ़ हो—लिखना-पढ़ना न आता हो, किन्तु ज्ञान को अन्तरोन्मुख करके यदि चैतन्य विषय को जानता है तो उसका ज्ञान पास है; आत्मविज्ञान की परीक्षा में वह उत्तीर्ण है और उसका ज्ञान मोक्ष का कारण है; तथा उसी ने सच्ची विद्या पढ़ी है। जो मोक्ष का कारण हो, वही सच्ची विद्या है; इसके अतिरिक्त लौकिक विद्या चाहे जितनी पढ़ ले, तथापि आत्मविद्या में तो वह अनुत्तीर्ण है।

जिज्ञासुओं के लिये स्वर्णावसर

आसोज सुद १५ तक के लिये कुछ ग्रन्थों के मूल्य में कमी

१- लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका—

जिसमें तत्त्वज्ञान के सुगम शैली से प्रवेश पाने के लिये शास्त्राधार सहित सुगम और प्रयोजनभूत प्रश्नोत्तर हैं। मूल्य ०-१९ नये पैसे। एकसाथ २५ बुक में १२॥) टका के हिसाब से कमीशन देंगे और १०० बुक मंगाने पर २५) टका कमीशन देंगे।

२- श्री समयसार प्रवचन भाग-३ हिन्दी ४॥) वाला अर्ध मूल्य में

३- भेदविज्ञानसार २) वाला अर्ध मूल्य में

४- श्री जैन तीर्थ पूजा पाठ संग्रह-

जो भक्ति पूजा और तीर्थयात्रा के समय जिनेन्द्रों की बड़ी-बड़ी पूजा के लिये उपयोगी पुस्तक है। जिसमें भारतवर्ष के प्रायः सब तीर्थक्षेत्र तथा अतिशय क्षेत्रों में पूजा के समय जो प्राचीन पूजायें चल रही हैं, वे हैं, और यात्रियों के लिये तीर्थक्षेत्रों के विषय में प्रयोजनभूत आवश्यक जानकारी और कहाँ से कहाँ जाना इत्यादि वर्णन होने से अति उपयोगी है। बहुत अच्छे कागज पर सुन्दर ढंग से बड़े टाइप में छपी है, बढ़िया कपड़े की जिल्द पत्र सं० ३०० मूल्य १-४५ पोस्टेजादि अलग। १० पुस्तक एक साथ लेने पर २५) प्रतिशत कमीशन और एक ग्रंथ में दस टका कमीशन देंगे। पोस्टेजादि अलग।

५- ज्ञानस्वभाव और ज्ञेयस्वभाव-

जो जैनधर्म का महत्वपूर्ण तात्त्विक और प्रयोजनभूत ग्रन्थ है। जो जिज्ञासुओं के लिये सर्व समाधानरूप अपूर्व वस्तुस्वभाव के ज्ञानमय तत्त्वदृष्टि प्रगट करनेवाली महान चीज़ है। इसके मुख्य विषय—

१- क्रमबद्धपर्याय के स्वरूप का विस्तारपूर्वक स्पष्टीकरण तथा उनमें दोष कल्पना का निराकरण है।

२- सम्यक् अनेकान्तगर्भित सम्यक् नियतवाद-जिसमें पुरुषार्थ, स्वभाव, काल, नियति

और कर्म ये पंच समवाय और क्रमबद्ध के निर्णय में स्वसन्मुख होने का सच्चा पुरुषार्थ तथा अनेकान्त।

३– अनेकान्त, निमित्त–उपादान, निश्चय–व्यवहार।

४ – द्रव्य–पर्याय संबंधी अनेकान्त।

५– अनन्त पुरुषार्थ।

६. वस्तुविज्ञान, अंक, जिसमें श्री प्रवचनसारजी गाथा ९९ के ऊपर पू० श्री कानजीस्वामी द्वारा प्रवचनों का सार है।

७– आत्मा कौन है और कैसे प्राप्त हो—इस विषय में प्रवचनसार शास्त्र में ४७ नयों द्वारा आत्मद्रव्य का वर्णन है, उस पर खास प्रवचनों का सार—जिसमें नियतनय, अनियतनय, कालनय, अकालनय से वर्णन है। बढ़िया जिल्द सुन्दर कागज व आकर्षक बढ़िया टाइप में उत्तम छपाई है, पत्र सं० ४०० मूल्य २–५० नये पैसे।५० पुस्तक लेने पर १० टका के हिसाब से कमीशन देंगे।

पता—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

नया प्रकाशन

मोक्षशास्त्र (तत्त्वार्थसूत्रजी) दूसरी आवृत्ति

छपकर तैयार हो गया है। तत्त्वज्ञान के जिज्ञासुओं द्वारा उसकी बहुत समय से जोरों से माँग है, जिसमें सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वार्थों का और सम्यग्दर्शन आदि का निरूपण सुगम और स्पष्ट शैली से किया गया है, सम्यक् अनेकान्तपूर्वक नयार्थ भी दिये हैं और जिज्ञासुओं के समझने के लिये विस्तृत प्रश्नोत्तर भी नय-प्रमाण द्वारा-सुसंगत शास्त्राधार सहित दिये गये हैं, अच्छी तरह संशोधित और कुछ प्रकरण में प्रयोजनभूत विवेचन बढ़ाया भी है, शास्त्र महत्वपूर्ण होने से तत्त्व प्रेमियों को यह ग्रन्थ अवश्य पढ़ने योग्य है, पत्र सं० ९०० मूल्य लागत मात्र, ५) पोस्टेज आदि अलग। पचास ग्रन्थ मंगानेवाले को दस टका कमीशन; सौ पुस्तक में बीस टका कमीशन और १० पुस्तक से कम मंगाने पर कमीशन नहीं देंगे।

मंगानेवालों की संख्या बहुत होने से आगे से ग्राहक होनेवालों को प्रथम मिलेगा। ओर्डर शीघ्र भेज दीजियेगा। सुभीते के लिये मदनगंज से भी पुस्तक भेजी जावेगी।

पता—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

परमपूज्य श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक वचनों का अपूर्व
लाभ लेने के लिये निम्नोक्त पुस्तकों का—

अवश्य स्वाध्याय करें

मूल में भूल	।।।)	मोक्षशास्त्र बड़ी टीका सजिल्द	५ ॥=)
श्री मुक्तिमार्ग	॥=)	सम्यग्दर्शन	१ ॥=
श्री अनुभवप्रकाश	॥)	द्वादशानुप्रेक्षा (स्वामि कार्तिकेयानुप्रेक्षा)	२)
श्री पंचमेरु आदि पूजासंग्रह	।।।)	जैन तीर्थ पूजा पाठ संग्रह कपड़े की जिल्द	१ ।=)
समयसार प्रवचन भाग २	५ ।)		
समयसार प्रवचन भाग ३	४ ॥)	भेदविज्ञानसार	२)
प्रवचनसार	५)	अध्यात्मपाठसंग्रह	५)
अष्टपाहुड़	३)	समयसार पद्यानुवाद	।)
चिद्विलास	१=)	निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ?	=)
आत्मावलोकन	१)	स्तोत्रत्रयी	॥)
मोक्षमार्ग-प्रकाशक की किरणें प्र०	१ ।=)	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	=)
द्वितीय भाग	२)	'आत्मधर्म मासिक' लवाजम-	३)
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला प्र०	॥-)	आत्मधर्म फाइलें १-२-३-५-६-७-८-१० वर्ष	३ ।।।)
द्वितीय भाग	॥-)		
जैन बालपोथी	।)	शासन प्रभाव	=)
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	२ ॥)		

हिन्दी आत्मधर्म की फाइलें

वर्ष १, २, ३, ५, ६, ७, ८, १० यह आठ फाइलें एक साथ लेने वालों को ३०-०-० के बदले २०-०-० में दी जायेंगी।

[डाकव्यय अतिरिक्त]

मिलने का पता—
श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)
प्रकाशक—श्री जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।